वीतराग विज्ञान

शिरीष मुनि
(श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री)

शक्ति
आनन्द
सुख
ज्ञाता-द्रष्टा
ज्ञान
भेद-विज्ञान
मैं आत्मा
सोऽहं

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

वीतराग विज्ञान

Science of Non-Attachment

(अरिहंत वाणी सहित)

आशीष / मार्गदर्शन

जैन धर्म दिवाकर युगपुरुष आचार्य सम्राट्

ध्यानगुरु श्री शिव मुनि जी म.

प्रस्तुति

आत्मयोगी श्री शिरीष मुनि जी म.

(श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री)

पुस्तक-पुष्प : **वीतराग-विज्ञान (Science off Non-Attachment)**

आशीष : आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी म.

प्रस्तुति : श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री श्री शिरीष मुनि जी म.

सहयोग : अरिहंत आराधिका निशा जैन

प्रकाशक : शिवाचार्य आत्म ध्यान फाउण्डेशन
एफ-13/4, द्वितीय तल, मॉडल टाउन,
उत्तर-पश्चिमी दिल्ली-110009

नौ संस्करण : 27000 प्रतियां

दशम संस्करण : फरवरी 2023 (संशोधित)

सहयोग राशि : 100 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान : 1. शिवाचार्य आत्मध्यान फाउण्डेशन
श्री आदीश्वर धाम कुप्पकलां, जिला मालेरकोटला, (पंजाब)
पिन कोड-148019, मो. 8437700992

2. शिवाचार्य आत्मध्यान फाउण्डेशन
सर्वे नं. 350/1ए/2, तवली फाटा, पेठ रोड़, राम नगर, मखमलाबाद,
नासिक-422003, मो. 8275851542, 9355111542

3. आत्म भवन
416-417, अवध संगरीला, मुम्बई-अहमदाबाद हाइवे नं. 48,
लब्धि-पार्श्वनाथ तीर्थ धाम के सामने, पो. बलेश्वर, सूरत-394317
मो. 9350111542

मुद्रक : कोमल प्रकाशन, दिल्ली
दूरभाष : 9210480385

© सर्वाधिकार सुरक्षित

परमात्म-मय होने का आध्यात्मिक विज्ञान

आत्म ध्यान

आनंद, शांति, सुख, समृद्धि और समाधान प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक अपेक्षाएं हैं। इन्हीं अपेक्षाओं की पूर्ति के लिये प्रत्येक मानव दिन-रात श्रम करता है, भाग-दौड़ करता है, विविध साधनों-संसाधनों का संग्रह करता है परन्तु उसकी अपेक्षाएं पूरी नहीं हो पाती। सुख के साधनों के अंबार लगाकर भी उसे सुख प्राप्त नहीं हो पाता।

आत्मज्ञानी श्रद्धेय शिवाचार्य श्री फरमाते हैं –

सुख, साधनों में नहीं है। सुख, साधना में है।
आनंद, पदार्थ में नहीं है। आनंद, स्वात्मा में है।
शांति, बाह्य-भ्रमण में नहीं है। शांति, आत्म-रमण में है।
समृद्धि, संचय में नहीं है। समृद्धि, सामायिक और "मैं आत्मा" में है।
समाधान, पर-ध्यान में नहीं है। समाधान, आत्म-ध्यान में है।

"आत्म-ध्यान" एक आध्यात्मिक उत्क्रांति है। जिह्वा पर रखा गया मधु-बिन्दु जैसे तत्क्षण मुख में माधुर्य उत्पन्न कर देता है, वैसे ही "आत्म-ध्यान' का प्रथम क्षण ही साधक के मानस को आत्म-मधु-माधुर्य से भर देता है। स्वर्ग, जन्नत या हैवन (Heaven) मृत्यु के बाद का सच हो सकता है, पर आत्म-ध्यान से टूटती कर्म-शृंखलायें और आत्मानंद का बहता प्रवाह इसी क्षण का सच हैं। प्रतिदिन प्रवचन के पश्चिम-पलों में श्रद्धेय शिवाचार्य श्री मात्र पांच मिनट के लिए "आत्म-ध्यान" का एक छोटा-सा प्रयोग करवाते हैं। वह छोटी-सी समाधि-बेला ही सहस्रों मुमुक्षुओं के लिये "आत्म-ध्यान" के एक, चार, सात और दस दिवसीय शिविरों के लिए प्रवेश-द्वार बन चुकी है।

दुर्लभातिदुर्लभ संयोग आज सर्व सुलभ है। जिन नहीं, पर जिनकल्प श्रद्धेय शिवाचार्य श्री आज सदेह इस भूतल पर विहरमान हैं। यह इस भूतल का सौभाग्य है। इस सौभाग्य में सहभागी होने के लिये प्रत्येक मुमुक्षु आमंत्रित है।

आइये, "आत्म-ध्यान" में डुबकी लगाइये और उस अमृत को प्राप्त कर लीजिये जो कभी आप से दूर था ही नहीं।

.....उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।

-शिरीष मुनि

आचार्य श्री की कलम से

भगवान् महावीर से पूछा गया –

के सामाइए? के सामाइए अट्ठे?

अर्थात् सामायिक क्या है और सामायिक का अर्थ क्या है?

भगवान ने समाधान दिया –

आया सामाइए, आया सामाइए अट्ठे।

आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ है।

स्वयं के शुद्ध स्वरूप में स्थिर हो जाना ही सामायिक है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप है–ज्ञाता और द्रष्टा भाव। पुद्गल के जगत् में जो भी घटित हो रहा है उसे जानिए और देखिए! उसके साथ स्वयं को स्पंदित न बनने दें। आप पर कोई आग बरसाता है तो उसे देखिए! रोषारुण मत बनिए उस पर। देखिए कि आप पर बरसाई गई आग जो ज्वलनधर्मी है उसे ही जला पाई है। आप ज्वलनधर्मी नहीं हैं। शरीर के जल जाने पर भी आप जलते नहीं हैं। कोई सम्मान के पुष्प भेंट करे तो आह्लादित न बनें। क्योंकि बाह्य सम्मान की पहुंच जो वास्तव में आप हैं वहां तक नहीं हैं। कोई सम्मान दे या न दे, तब भी आप अपने स्वरूप के भीतर परम सम्मानित हैं। आपका ज्ञाता-द्रष्टा स्वरूप आपका परम से परम सम्मानित स्वरूप है।

सामायिक का अर्थ है – ज्ञाता-द्रष्टा भाव में सुस्थिर हो जाना। आपका ज्ञाता-द्रष्टा भाव जितना संपुष्ट होगा उतनी ही तीव्रता से आपकी कर्म निर्जरा होगी।

वीतराग सामायिक के क्षण में हम अपने ज्ञाता-द्रष्टा भाव को संपुष्ट बनाते हैं। सामायिक के साधक को हम पूरे भाव से उसके स्वरूप की स्मृति देते हैं। उसके स्वरूप पर आई विस्मृति की धूल को दूर करते हैं। विस्मृति की धूल हटते ही साधक अपने भीतर चमत्कृत हो उठता है। वह अपने भीतर कुछ ऐसा पा लेता है जो सुन्दरं-सुन्दराणां है।

आप एक शुद्धात्मा हैं। यही आपका आत्यंतिक स्वरूप है। यही आपका इकलौता पता है। पर शब्द से इसे बता पाना संभव नहीं है। गहरे में पैठ कर इसकी पहचान पाई जा सकती है। उसके लिए सामायिक ही परम आधार है। वीतराग सामायिक का सुक्षण प्राणीमात्र को उपलब्ध हो, इसी मंगल मनीषा के साथ–

–शिव मुनि

(श्रमण संघीय आचार्य)

आमंत्रण

स्मृति-भ्रम के कारण अपने घर का पता विस्मृत हो जाने पर व्यक्ति की जो दशा होती है वही दशा निज आत्मा की है। हमारी आत्मा अपने घर सिद्धालय का पता भूल गई है। इससे भी आगे का यथार्थ यह है कि वह यह भी भूल गई है कि वह स्वयं कौन है। जिसे अपने नाम और धाम का ही बोध न हो उसकी क्या स्थिति हो सकती है इसे सहज ही समझा जा सकता है।

आत्म-विस्मरण ही आत्मा की अनादिकालीन भ्रमणा का मूल कारण है। आत्म-विस्मरण के कारण ही यह आत्मा विभिन्न गतियों और विभिन्न योनियों में भटकता रहा है। इसने जिस भी देह को धारण किया उसे ही स्व मान लिया। मानव देह में जन्म लिया तो मान लिया कि मैं मानव हूं। पशु-देह में जन्म लिया तो मान लिया कि मैं पशु हूं। देव-भव में जन्म लिया तो यह देवत्व के अहं में अकड़ गया। यह आत्मा जिस भी देह में रही उसे ही स्व मानती रही। परन्तु सच में देह अलग है और आत्मा अलग है। देह जड़ है, नश्वर है और प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। आत्मा का गुणधर्म देह से सर्वथा विपरीत है। आत्मा ज्ञान-दर्शन रूप है, सदाकाल अविनाशी और नित्य है।

आत्मबोध जगे तो सिद्धालय दूर नहीं। **बुद्धाणं बोहियाणं** स्वयंबुद्ध अरिहंत देव संबोधि का महादान जगत् को देते हैं। यह अरिहंतों की अनन्त करुणा है जगत् के लिए। अरिहंतों की अविद्यमानता में जगत्-कल्याण का यह अनुष्ठान उनके प्रतिनिधि आचार्य देव, उपाध्याय देव और साधु-साध्वी संपन्न करते हैं। वर्तमान में भरतक्षेत्र में सहस्त्रों साधु-साध्वी इस मंगल अनुष्ठान की साधना में संलग्न हैं।

उसी कड़ी में तीर्थंकर महावीर की पट्ट परम्परा के 94वें पट्टधर आचार्य देव श्री शिव मुनि जी महाराज उक्त आध्यात्मिक महामिशन को आगे बढ़ा रहे हैं। आचार्य देव जगत् को संबोधि का संदेश दे रहे हैं, मानव को उसके स्वरूप का बोध दे रहे हैं और दे रहे हैं उसके वास्तविक घर सिद्धालय का परिबोध। यह आचार्य देव की महान करुणा है कि उन्हें जो उपलब्ध हुआ है वे उसे जन-जन में

बांट देने को उत्सुक हैं। अनन्त उपकार है यह आचार्य देव का, करुणा की विवशता अथवा उत्साह है। विश्व-मंगल के लिए वे बांटने को और स्वयं बंटने को उत्साहित हैं।

वीतराग सामायिक

'वीतराग सामायिक' के रूप में शुद्ध सामायिक की साधना आचार्य देव का महान अवदान है। आचार्य देव फरमाते हैं–

"सामायिक ही ध्यान है और ध्यान ही सामायिक है। आर्त्त और रौद्र-ध्यान के चक्रव्यूह से बाहर निकलकर धर्मध्यान में आत्म-विहार करते हुए शुक्लध्यान में स्वयं को स्थिर कर लेना ही ध्यान है और यही सामायिक भी है। सामायिक अर्थात् समता में स्थिरता। जहां न राग हो, न द्वेष हो, न स्व हो, न पर हो, केवल एक शुद्धात्मा का भाव हो, वहां सामायिक की सुवास जन्म लेती है।"

जिनमार्ग में प्रारंभ से ही सामायिक आत्म-साधना का मूल आधार रही है। सामायिक से साधना की शुरुआत होती है और सामायिक में ही साधना संपन्न होती है। सामायिक की उच्चतम भाव दशा में पहुंचकर आत्मा कैवल्य को उपलब्ध होता है। कैवल्य अर्थात् आत्मा का शुद्धतम स्वरूप। केवली अवस्था ही परमात्म-अवस्था है। उसी अवस्था का नाम सिद्धालय, मोक्ष अथवा निर्वाण भी है।

सामायिक जैसी महान साधना जैन परम्परा के पास है परन्तु इस महान साधना के व्यावहारिक पक्ष तक ही आज पहुंच है। द्रव्य सामायिक करके ही साधना की इतिश्री मान ली जाती है। द्रव्य सामायिक में अशुभ से शुभ में मन लगाने के लिए अनेक शुभ आलंबन प्रचलित हैं, जैसे कि पाठ, जप, स्तोत्र, भजन, स्वाध्याय आदि। इनकी आराधना करते-करते अगर शुद्ध भाव आएं तो निर्जरा होती है अन्यथा पुण्य का बंध होता है।

सामायिक का ऐकान्तिक लक्ष्य है–कर्म निर्जरा। इसके लिए आवश्यक है द्रव्य सामायिक के साथ ही भाव सामायिक में प्रवेश किया जाए। यही सामायिक 'वीतराग सामायिक' है।

वीतराग सामायिक की साधना कराते हुए आचार्य देव सर्वप्रथम साधक को मिथ्यात्व से मुक्त कराते हैं। उसे सघनता से यह बोध कराते हैं कि वह एक शुद्धात्मा है। आचार्य देव साधकों को यह संदेश देते हैं – "तुम नाम नहीं हो, शरीर नहीं हो, किसी के पिता, पुत्र या संबंधी नहीं हो। तुम एक चैतन्य स्वरूप

शुद्ध आत्मा हो। जो सिद्धों की आत्मा है वही तुम्हारी आत्मा है। जो किंचित् विभेद दिखाई देता है वह कर्म-रज का ही विभेद है। कर्म-रज से मुक्त होते ही तुम स्वयं परमात्मा हो, स्वयं महावीर हो।"

साधना के क्षेत्र में 'वीतराग सामायिक' एक क्रांतिकारी आध्यात्मिक अन्वेषण है जिसे आचार्य देव ने साधना के अतल में पैठ कर अन्वेषित किया है। महाविदेह क्षेत्र में विराजित अरिहंत परमात्मा श्री सीमंधर स्वामी की महान कृपा, शासन देव, शासन माता के आशीर्वाद के प्रकाश में इस साक्षात् महान साधना का भरतक्षेत्र में प्रकटीकरण महान पुण्य का हेतु है। आचार्य देव इसमें स्वयं को एक निमित्त मात्र मानते हैं। यह आचार्य देव की स्वाभाविक विनम्रता और अर्हता है।

विश्व-कल्याण के इस महनीय उपक्रम में अरिहंत आराधिका निशा जैन भी अपनी सेवाएं प्रदान कर रही हैं। उन्हें शत-शत साधुवाद।

बत्तीस दोषों से मुक्त शुद्ध सामायिक एवं आत्म-ध्यान-शिविरों के एक अवसर के लिए मैं अपने पाठकों को आमंत्रित करता हूं। मेरे आमंत्रण को मेरा प्रेमाग्रह, आग्रह या फिर अत्याग्रह ही मानकर इस साधना में दो घड़ी मात्र के लिए सम्मिलित होइए! मुझे विश्वास है कि मेरा आग्रह आपके जीवन में मधुरतम से मधुरतम आमंत्रण सिद्ध होगा।

–शिरीष मुनि

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
●	*आत्म ध्यान*	III
●	*आचार्य श्री की कलम से*	IV
●	*आमंत्रण*	V
●	**नवकार सूत्र**	**1**
●	गुरु-वन्दन सूत्र	2
●	सामायिक-संकल्प	2
●	वीतराग सामायिक-संकल्प	3
●	सामायिक समापन-विधि	3
●	सामायिक के 32 दोष	4
●	वर्तमान तीर्थंकर भगवान श्री सीमंधर स्वामी का परिचय...	8
●	भाव प्रतिक्रमण	10
●	प्रात: विधि	12
●	नमस्कार-विधि	13
●	अठारह भावनाएँ	15
●	बारह भावनाएँ	17
●	वीतराग-सामायिक : संकल्प और साधना	29
●	निश्चय व्यवहार वीतराग विधि	37
●	आलोचना-प्रतिक्रमण	43
●	संलेखना-पाठ	54
●	मंगल मैत्री	62
●	मौलिक प्रश्न	63
●	समाधान शिवाचार्य श्री जी के	65

- रोम-रोम पुलकित हुआ 71
- आत्म-ध्यान के गंभीर साधकों के लिए साधना-सूत्र 74
- **अरिहंत वाणी** **75**
- मैं शुद्धात्मा हूँ 75
- श्वासों को ज्ञाता-द्रष्टा भाव से देखो 75
- लक्ष्य तय करें 76
- लक्ष्य है सिद्धालय 76
- सिद्धालय-सिद्धि हेतु क्या करें? 76
- त्रिकाल सत्य है आत्मा 77
- आत्मस्वरूप 77
- सत्यमय होकर जीएं 77
- आत्म-पुरुषार्थ 78
- व्यर्थ से बचें 78
- साधना को प्रमुखता दें 79
- समता भाव 79
- आराधना-भक्ति 79
- कृतज्ञ-भाव 80
- घर लौटने की कला 80
- कृतज्ञता 81
- उपवास का स्वरूप 81
- निर्जरा-विधि 81
- साधना-विधि 81
- शुद्धात्म ज्ञान 82
- विहरमान भगवान् 82
- सिद्धालय कैसे लौटें? 83
- सरलता है उपाय 83

- भावानुरूप सिद्धि 83
- प्राण-प्राण प्रार्थना हो जाए 83
- साधना कैसे बढ़े? 84
- कर्म बन्धन का मूल : आसक्ति 84
- निर्जरा के साधन 85
- प्रतिक्षण निर्जरा 85
- कर्मक्षय की विधि : भेद-ज्ञान 86
- अन्तरहित ज्ञान : अनन्त ज्ञान 86
- आत्मज्ञान 86
- एकत्वानुप्रेक्षा 87
- समस्या का समाधान 88
- साधना-विधि 88
- व्यवहार-विधि 88
- निद्रा 89
- निद्रा-निवारण 90
- लक्ष्य 90
- राग और प्रेम 90
- अहंकार-शून्यता 91
- परमात्म-दृष्टि 91
- अप्पा सो परमप्पा 91
- प्रत्येक आत्मा में छिपा है परमात्मा 91
- प्रमाद से बन्ध 92
- आलोचना-विधि 92
- विचार-मुक्ति का उपाय 93
- धर्म-शुक्ल का अन्तर 93
- प्रतिक्रिया है बन्धन 94

- भेद विज्ञान 94
- भाव प्रतिक्रमण करें 95
- कर्म-बन्धन 95
- जागरुकतापूर्वक विश्राम लें 96
- जागरुकतापूर्ण निद्रा कैसे संभव है? 96
- बहिर्दर्शन-अन्तर्दर्शन 96
- कर्मक्षय का विज्ञान 97
- सबसे बड़ा असत्य 98
- असत्य का परिणाम 98
- नित्य 98
- आत्म-स्वरूप 98
- संसार-स्वरूप 98
- सम्यक् दर्शन 98
- व्यवहार सम्यक् दर्शन 99
- निश्चय सम्यक् दर्शन 99
- कायोत्सर्ग 99
- निन्दा का कारण 99
- सबसे बड़ा सत्य 99
- अनित्य 99
- नित्य 100
- साधना 100
- साधना-विधि 100
- पाठ कौन-सा करें? 100
- निर्जरा-स्वरूप 100
- सोऽहं-स्वरूप 100
- साधना को कैसे फैलाएं? 101

- वीतरागता का विस्तार 101
- लक्ष्य-प्राप्ति की विधि 102
- समता है उपाय 102
- इच्छा-निरोध 103
- शुद्धात्मा का ध्यान 103
- संकल्प 103
- भक्ति का स्वरूप 103
- कर्म-निर्जरा 104
- पुण्य 104
- निर्जरा से मुक्ति 104
- पुण्य : आवश्यक-अनावश्यक 104
- महापाप है आत्महत्या 104
- साम्य योग 105
- धर्म-चिन्ता? 105
- अहिंसा का स्वरूप 105
- साधना है प्रमुख 106
- जाणिज्जइ चिंतिज्जइ... 106
- संकल्प की सीढ़ियां 106
- धर्म-अधर्म का प्रभाव 107
- सम्यक् दृष्टि जीव 107
- देवत्व की उपलब्धियां 107
- क्रोध 108
- भीतर लौटें 108
- समाधि : प्रवेश विधि 108
- प्रमाद का स्वरूप 109
- नमस्कार क्यों? 109

- दिन की शुरुआत 109
- पंचम आरे में मोक्ष 110
- समय की मर्यादा 110
- सामायिक का प्रारंभ 111
- सामायिक की पूर्णाहुति 111
- महाविदेह क्षेत्र 111
- निर्जरा किससे? 111
- ओंकार 112
- बंध / मुक्ति 112
- आत्मा का सतत चिन्तन 112
- अभवी कौन? 113
- देह-तल / आत्म-तल 113
- बंध-निर्जरा 114
- सच्ची साधना 114
- आत्मानुभूति 115
- संसार-भ्रमण का कारण 115
- क्रोध का कारण 116
- 'मैं' और 'मेरे' का अन्तर 116
- सम्यक्त्व-स्पर्श 116
- आत्म-ज्ञान / अनन्त ज्ञान 116
- परिभ्रमण का आधार 117
- समाधि-विज्ञान 117
- प्रतिकूलता में समता 117
- साधु का लक्षण 118
- आत्मिक सुख 118
- सम्यक्त्व-स्पर्श 118

- आत्मानुभूति 118
- कर्ममुक्ति का साधन 119
- साधना में पुरुषार्थ 119
- श्रेष्ठ मानव-जीवन 119
- सुख है अपने ही भीतर 119
- आत्म-ज्ञान 120
- आत्म-शुद्धि 120
- देह और आत्मा 121
- कल्याणक-आराधना 121
- आनंद का रसकंद : आत्मा 121
- आत्म-श्रद्धा 121
- समत्व : सुख का सेतु 122
- तं सच्चं खु भगवं 122
- क्षणिक जीवन 122
- शरण-अशरण 123
- शाश्वत-सुख की बाधा 123
- एकत्व भावना 123
- आत्म-रमण 124
- उपवास का स्वरूप 124
- समता से कर्म-निर्जरा 125
- शीघ्र लक्ष्य-प्राप्ति 125
- कल्याणक-महत्व 126
- कर्म-बंध विराम 126
- उदय कर्म का महत्व 126
- स्वतंत्रता का अहसास 128
- पुरुषार्थ 128

- प्रमाद : ध्यान का शत्रु 130
- आत्मा के आठ गुण 130
- अनन्त ज्ञान 130
- अनन्त दर्शन 131
- अनन्त-सुख 131
- अनन्त-शक्ति 131
- अमूर्तत्व 132
- अगुरुलघुत्व 132
- क्षायिक सम्यक्त्व 132
- अटल अवगाहना गुण 132
- आकर्षण-मुक्ति 133
- आत्म-निरीक्षण आत्म-परीक्षण 133
- **भक्ति गीत** **142**
- आत्म-ध्यान क्या है? 154
- आत्म-ध्यान साधना शिविर : एक परिचय 155
- आत्म-ध्यान : एक विवरण 157
- शिवाचार्य आत्मध्यान फाउण्डेशन : एक परिचय 160
- श्री सरस्वती विद्या केन्द्र, नासिक : एक परिचय 163
- श्री आदीश्वर धाम तीर्थ-स्थल : एक परिचय 166
- आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज : शब्द चित्र 169
- गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज : शब्द चित्र 170
- आचार्य सम्राट श्री शिव मुनि जी महाराज : शब्द चित्र 171
- श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज : शब्द चित्र 173
- ध्यान साहित्य, सी.डी., डी.वी.डी. 174
- श्रमण संघ 176

नमन

वीर प्रभु महाप्राण, सुधर्मा जी गुणखान।
अमर जी युगभान, महिमा अपार है।
मोतीराम प्रज्ञावन्त, गणपत गुणवन्त।
जयराम जयवन्त, सदा जयकार है।।

ज्ञानी-ध्यानी शालीग्राम, जैनाचार्य आत्माराम।
ज्ञान गुरु गुणधाम, नमन हजार है।
ध्यान योगी शिव मुनि, मुनियों के शिरोमणि।
पूज्यवर प्रज्ञाधनी शिरीष नैया पार है।।

नमस्कार सूत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच णमोक्कारो
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवई मंगलं॥

अरिहंत-भगवंतों को मैं नमस्कार करता हूं।
सिद्ध भगवंतों को मैं नमस्कार करता हूं।
आचार्य भगवंतों को मैं नमस्कार करता हूं।
उपाध्याय भगवंतों को मैं नमस्कार करता हूं।
इस लोक के सभी साधु-भगवंतों को
मैं नमस्कार करता हूं।
ये हैं पांच नमस्कार,
सब पाप के हैं निवारक।
सर्व मंगलों में,
ये हैं प्रशस्त प्रथम मंगल॥

गुरु-वन्दन सूत्र

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं
करेमि वंदामि नमंसामि
सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं
मंगलं देवयं चेइयं
पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि॥

भावार्थ– अहो गुरुदेव जी महाराज !
दाहिनी ओर से शुरू करके
पुनः दाहिनी ओर पर्यंत
आपकी तीन बार प्रदक्षिणा करता हूं।
आपको वन्दन करता हूं, नमस्कार करता हूं!
आपका सत्कार करता हूं, सम्मान करता हूं।
अहो गुरुदेव!
आप कल्याण-रूप हैं, मंगल-रूप हैं
देव-रूप हैं एवं ज्ञान-रूप हैं।
गुरु-भगवन्त!
मैं आपकी पर्युपासना करता हूं,
और मस्तक झुका कर वन्दन करता हूं।

सामायिक-संकल्प

हे भगवन्! सामायिक व्रत में प्रवेश करना चाहता हूँ। सभी अशुभ कर्मों से निवृत्त होने का प्रत्याख्यान करता हूँ। पूरे सामायिक काल में कोई अशुभ काम न मैं स्वयं करूँगा, न किसी से कराऊँगा, मन से, वचन से एवं काय से। वह आत्मा जिसने सामायिक से पूर्व जो भी कर्म इस शरीर के द्वारा किया है उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, अर्थात् ये सभी कर्म मेरे शरीर ने किए, मैं

आत्मा था, आत्मा हूँ एवं आत्मा ही रहूँगा। अब मैं पूरे सामायिक काल में ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रहने का पुरुषार्थ कर सकूँ, ऐसी परम शक्ति दें।

वीतराग सामायिक-संकल्प

हे अरिहंत परमात्मा!
मैं वीतराग सामायिक में प्रवेश करना चाहता हूं!
पूरे 48 मिनट
ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रह सकूं, ऐसी आप मुझे शक्ति दें–(3)

सामायिक समापन-विधि

मैं शुद्धात्मा हूं–(11 बार)
मैं निश्चय निर्णय से केवल शुद्धात्मा ही हूं– (3)
मेरा घर सिद्धालय है
मैं निश्चित अपने घर को लौटूंगा (3)
पूरे सामायिक काल में
10 मन के, 10 वचन के और 12 काय के
दोष लगे हों तो
अरिहंत भगवान की साक्षी से
बारम्बार तस्स मिच्छामि दुक्कडं (3)
हे अरिहंत प्रभु!
मुझे क्षमा करें! क्षमा करें!! क्षमा करें!!!

उ उ उ

सामायिक के 32 दोष

32 दोषों को टाल कर सामायिक की आराधना करनी चाहिए। दस मन से उत्पन्न होने वाले, दस वचन से उत्पन्न होने वाले और बारह काय-संबंधी दोषों का प्रतिपादक आगमीय सूत्र इस प्रकार है–

अविवेग जसो कित्ती, लाभत्थी गव्व-भय-नियाणत्थी।
संसय रोस अविणओ, अबहुमाणए दोसा भाणियव्वा।।
कुवयण सहसाकारे, सच्छंद-संखेव-कलहं च।
विकहा हासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा दस दोसा।।

कुआसणं चलासणं चलदिट्ठी,
सावज्जकिरियाऽऽलंबणा-कुंचण पसारणं।
आलस-मोडण-मल विमासणं,
निद्दा वेयावच्चत्ति बारस काय दोसा।।

दस मन के दोष

1. **अविवेक दोष**–सामायिक साधना के प्रति अविवेकपूर्ण चिन्तन मन में उभरना। उदाहरणार्थ यह सोचना कि ऐसे बैठने से भला क्या होगा। मुंह बांधकर बैठना आदि व्यर्थ क्रियाएं हैं। सामायिक के प्रति ऐसा चिन्तन एक बहुत बड़ा मानसिक दोष है।

2. **यशोवाञ्छा दोष**–यश, कीर्ति, सम्मान आदि की आकांक्षा से सामायिक करना। अर्थात् यह सोचकर सामायिक करना कि लोग मुझे धार्मिक मानकर मेरा सम्मान करेंगे। यह भी एक दोष है जो सामायिक के सार-सत्व को पी जाता है।

3. **धनेच्छा दोष**–धन की आकांक्षा मन में दबाकर सामायिक करना। अर्थात् मैं सामायिक करूंगा तो मुझे व्यापार में लाभ होगा, भौतिक समृद्धि प्राप्त होगी, आदि विचारों / संकल्पों से सामायिक करना दोषपूर्ण है।

4. **गर्व दोष**–सामायिक का गर्व करना कि मेरे जैसी सामायिक कौन कर सकता है? अथवा मैं सामायिक नहीं करूंगा तो समाज में मेरी प्रतिष्ठा नहीं होगी। अहंतुष्टि के कारण सामायिक करना गर्वदोष है।

5. **भय दोष**–सामायिक करते हुए भूत, प्रेत, सर्पादि से भयभीत हो जाना। अथवा इस प्रकार का भय मन में रखकर सामायिक करना कि मेरे पूर्वज सामायिक करते थे, यदि मैं सामायिक नहीं करूंगा तो लोक में निन्दा का पात्र बनूंगा। यह भय दोष है।

6. **निदान दोष**–सामायिक करके उसके प्रतिफल के रूप में कुछ चाहना, अर्थात् ऐसा संकल्प करना कि मेरी सामायिक के फलस्वरूप मुझे अमुक वस्तु प्राप्त हो इत्यादि।

7. **संशय दोष**–सामायिक करते हुए उसके फल के प्रति सशंकित रहना, कि पता नहीं मुझे सामायिक का फल मिलेगा या नहीं मिलेगा। यह संशय दोष है।

8. **कषाय दोष**–क्रोध, मान, माया और लोभ–इन चार दुर्भावों में से किसी भी भाव से सम्प्रेरित बनकर सामायिक करना कषाय दोष है। इन चारों भावों में से कोई भी भाव सामायिक की अवस्था में साधक के मन का स्पर्श करे तो उसे कषाय दोष लगता है।

9. **अविनय दोष**–सामायिक और सामायिक के उपकरणों के प्रति अविनीतता रखना, धर्मशास्त्र, रजोहरणी, मुखवस्त्रिका के प्रति अनादरपूर्वक व्यवहार करना, उन्हें पैर से स्पर्श करना, आदि अविनय दोष है।

10. **अपमान दोष**–सामायिक के प्रति अपमानपूर्ण भावों का हृदय में जन्मना, अपमान दोष है।

उपरोक्त मन के दस दोष हैं, इनसे मन को अस्पर्शित रखना चाहिए और सुविचारों को उसमें प्रवेश देना चाहिए।

दस वचन के दोष

1. **अलीक दोष**–अलीक का अर्थ है झूठ। सामायिक में असत्य बोलने से उक्त दोष लगता है।

2. **सहसाकार दोष**–बिना सोचे-विचारे अकस्मात् बोल देना। ऐसा वचन

सत्य होने पर भी असत्य के समान ही होता है और इससे दूसरों का अहित संभावित होता है। अतः यह दोष है।

3. **असाधारण दोष**–श्रद्धा को अस्थिर बनाने वाले वचनों को बोलना, पर-पाखण्डियों की प्रशंसा करना, जिनमत के विपरीत प्ररूपणा करके दूसरों के सम्यग् दर्शन को भ्रमित करना।

4. **निरपेक्षा दोष**–शास्त्रीय दृष्टिकोण की उपेक्षा करके बोलना, विवादास्पद, असम्बद्ध भाषा बोलना।

5. **संक्षेप दोष**–शीघ्रता में सामायिक के पाठों को संक्षेप में दोहराना आदि।

6. **क्लेश दोष**–ऐसे वचन का व्यवहार करना जिससे पुराना क्लेश पुनर्जीवित हो जाए, अथवा नवीन क्लेश का जन्म हो जाए।

7. **विकथा दोष**–सामायिक में स्त्रीकथा, भत्तकथा (भोजन के विषय में), देशकथा, राजकथा–इन चार कथाओं में से कोई कथा कहना या सुनना। उक्त कथाएं यदि धर्मकथा की पोषक हों तो दोषपूर्ण नहीं हैं।

8. **हास्य दोष**–अविवेकपूर्वक उच्च स्वर में हंसना, किसी का मजाक करना आदि।

9. **निरपेक्ष दोष**–अशुद्ध या निन्दनीय वचनों का व्यवहार करना, किसी को गाली देना अथवा सामायिक के पाठों का अशुद्ध उच्चारण करना।

10. **मम्मण दोष**–जान-बूझकर गुनगुनाकर बोलना ताकि दूसरा उसके वचनों को न समझ सके।

ये दोष वचन से सम्बन्ध रखते हैं। सामायिक करते हुए श्रावक को उक्त दोषों से अपने वचन को बचाकर रखना चाहिए।

बारह काया के दोष

1. **अयोग्यासन दोष**–ऐसे आसन से बैठना जो अहं का प्रतीक हो, जैसे कि गुरुओं के समक्ष पांव पर पांव चढ़ाकर बैठना।

2. **चलासन दोष**–सामायिक में पुनः-पुनः आसन बदलना, कभी यहां कभी वहां बैठना, चलासन दोष है।

3. **चलदृष्टि दोष**–पुनः-पुनः दृष्टि को इधर-उधर दौड़ाना।

4. **सावद्यक्रिया दोष**–सामायिक में सावद्य (पापकारी) क्रियाएं करना।

5. **अवलम्बन दोष**–दीवार आदि का सहारा लेना। रुग्णावस्था तथा तपस्यादि से दैहिक क्षीणता आने पर आलम्बन लिया जा सकता है। परन्तु उसके लिए जरूरी है कि पहले दीवार आदि का प्रतिलेखन सम्यक् प्रकार से कर लेना चाहिए।

6. **आकुंचन-प्रसारण दोष**–पुनः-पुनः शरीर को संकोचना और फैलाना। ऐसा करने से जीव-हिंसा की संभावना रहती है।

7. **आलस्य दोष**–जंभाइयां लेना, अंगों को मरोड़ना, मटकाना आदि।

8. **मोड़न दोष**–अंगुलियों तथा अंगों को मटकाना।

9. **मल दोष**–शरीर पर से मैल उतारना, खुजली आदि करना। कदाचित् खुजलाना आवश्यक हो जाए तो शरीर की प्रतिलेखना करके खुजलाए।

10. **विमासन दोष**–शोकातुर / चिन्तातुर अवस्था में बैठना। जैसे कुछ लोग मस्तक पर अथवा चिबुक पर हाथ रखकर किसी चिन्ता विशेष में बैठते हैं।

11. **निद्रा दोष**–सामायिक में निद्रा लेना निद्रा दोष है।

12. **वैयावच्च दोष**–सामायिक करते हुए दूसरों से अपने शरीर की वैयावृत्त्य कराना, मालिश कराना आदि वैयावच्च दोष है।

उपरोक्त काय के बारह दोष तथा पूर्वकथित मन व वचन के दस-दस दोष, इस प्रकार सामायिक के कुल बत्तीस दोष हैं। इन दोषों से दूर रहकर की गई सामायिक ही शुद्ध सामायिक है।

○○○

वर्तमान तीर्थंकर भगवान श्री सीमंधर स्वामी का परिचय और उनके चरणों में भाव प्रार्थना

वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी भगवान् महाविदेह क्षेत्र में विराजमान हैं। पन्द्रह कर्म-भूमियां हैं जिसमें पांच भरत, पांच ऐरावत और पाँच महाविदेह क्षेत्र हैं। भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में कालचक्र का प्रभाव रहता है। अतः यहां पर सिर्फ चतुर्थ आरे में ही मोक्ष का मार्ग खुला होता है, अन्य समय में नहीं। लेकिन महाविदेह क्षेत्र में कालचक्र का प्रभाव न होने से वहां सदैव चतुर्थ आरे जैसा वातावरण रहता है। वहां से जीव सदैव मोक्ष को पधारते हैं।

हम सभी यहां पर दक्षिण भरत क्षेत्र में हैं। यहां से ईशान कोण में श्री सीमंधर स्वामी भगवान् विराजमान हैं। ईशान कोण अर्थात् पूर्व और उत्तर के मध्य की दिशा। पूर्व के किसी जन्म में भरत क्षेत्र में सीमंधर स्वामी भगवान् के जीव ने साधना की, इस कारण इस क्षेत्र पर उनकी विशेष कृपा है। अपनी निष्कपटता और हल्के कर्मों के कारण भगवान् के जीव का जन्म पूर्व महाविदेह क्षेत्र में हुआ। उन्होंने अपनी साधना के बल पर चार घनघाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। भगवान् का शरीर पांच सौ धनुष का है। उनका शरीर स्वर्ण की भांति चमकता है। वे बहुत ही सुंदर दिखाई देते हैं। उनका चिन्ह वृषभ है। उनका आभा-मण्डल (ऑरा) सुनहरी रंग का है। उनका आयुष्य चौरासी लाख पूर्व का है। वे गृहवास में तिरासी लाख पूर्व तक रहे। उनकी छद्मस्थ पर्याय एक हजार वर्ष की रही और भाव जिनचरित्र पर्याय एक लाख पूर्व की है। 17वें और 18वें तीर्थंकर के काल के मध्य में उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन हुआ और भावी चौबीसी के तीर्थंकर श्री उदयनाथ जी और श्री पेढालनाथ जी के दौरान उनका निर्वाण होगा। तब तक वे इस शरीर से भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग दर्शाते रहेंगे।

भगवान् के समवसरण में साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, इन्द्र, देव, चक्रवर्ती, राजा, महाराजा ये सभी उनकी पवित्र पावन देशना श्रवण करते हैं। उनके मुखारविन्द से बहने वाली जिनवाणी से साधक ध्यान की गहराई में प्रवेश करते हैं।

भगवान् स्वयं पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में देशना देते हैं और ध्यान के प्रयोग करवाते हैं जिससे सभी को शुद्धात्म भाव का बोध होता है। मैं कौन हूँ? मैं कहां से आया हूँ? मेरे जीवन का क्या लक्ष्य है? इन प्रश्नों का समाधान स्वयं साधकों से करवाते हैं और साधक स्वयं सिद्धालय का लक्ष्य तय करते हैं।

जीव चौरासी लाख जीवयोनी में भ्रमण करते हुए मनुष्य-जीवन को प्राप्त कर इसे कैसे व्यर्थ गंवा रहे हैं इस बात का बोध भगवान् अपनी देशना में समझाते हैं तथा जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करते हैं। उनके चरणों में बहुत-सी भव्य आत्माएं मुक्ति को प्राप्त हो गयी हैं। जिस प्रकार भगवान् महावीर भरत क्षेत्र में जीवों को बोध करवाते थे वैसे ही वर्तमान में भगवान् श्री सीमंधर स्वामी वहां पर सभी जीवों को बोध करवा रहे हैं। उस क्षेत्र में मुक्ति हर पल संभव है क्योंकि उस क्षेत्र का यह पुण्य प्रभाव है।

श्री सीमंधर स्वामी भगवान् के चरणों में आत्मार्थी साधक की भाव प्रार्थना–

भगवन्! हम पर कृपा करना कि हम मन, वचन, काया की एकता रखें और एक क्षण भी हमारा प्रमाद या आलस्य, निंदा-तिरस्कार का ना हो। हम भी अपने सभी कर्मों को क्षय कर सिद्धालय के अधिकारी बनें।

भगवन्! हमने आपके चरणों में बहुत सारी प्रार्थनाएं की थीं। भगवन्! वे प्रार्थनाएं संसार की थी। हमें अपने लक्ष्य का भी बोध नहीं था। कभी धन, कभी पद, कभी संयोग, कभी वियोग, कभी सुंदरता, कभी स्वास्थ्य की प्रार्थनाएं हम करते रहे! परन्तु अब हमें वास्तविकता का बोध हुआ। हमें संसार की कोई विनाशी वस्तु नहीं चाहिए। केवल आपकी शरण चाहिए।

हे प्रभु! हमें संसार में पुनः भ्रमण नहीं करना। हम आपके चरणों में उपस्थित होकर आपको निस्वार्थ वंदन करें। आपकी शरण में सर्वस्व अर्पण करें। हमारा मन, बुद्धि सदैव आपके अधीन विचरण करे, इससे अधिक हमें इस संसार की कोई भी दौलत नहीं चाहिए। हमारे भीतर निरन्तर शुद्धात्म-भाव बना रहे ऐसी परम शक्ति प्राप्त हो। हमारा हर कर्म भेद-ज्ञान की साधना से जुड़ा हो, हम पर ऐसी कृपा करो। हम पूर्ण समभाव से अपने सब कर्मों को क्षय कर अपने घर सिद्धालय को लौट जाएं, हमारी इतनी ही प्रार्थना है। हे प्रभु! इसे स्वीकार करें।

ooo

भाव प्रतिक्रमण

अरिहंत परमात्मा श्री सीमंधर स्वामी प्रभो! आत्मा का स्वरूप अनाहारक है तो भी मैंने शरीर के आश्रित सचित्त, अचित्त, मिश्र आहार किया, कराया, अनुमोदन किया, इस भव-परभव और अनंत भवों में आहार के लिए मैं लुब्ध हुआ। मैंने भोजन में किंचित् मात्र रस लिया, भोजन को लेकर कोई क्रिया-प्रतिक्रिया की, करायी, करने वाले का अनुमोदन किया, उसके लिए मैं अन्तःकरण से क्षमा मांगता हूँ, आप मुझे क्षमा करें! क्षमा करें! क्षमा करें!

इस शरीर में रहते हुए मैंने एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों की हिंसा की, करायी, उसका अनुमोदन किया। झूठ बोला, बुलवाया या बोलते हुए का अनुमोदन किया। चोरी की, करायी या उसका अनुमोदन किया। मैथुन सेवा, सेवाया, या सेवते हुए का अनुमोदन किया। मैंने परिग्रह रखा, रखवाया या उसका अनुमोदन किया तो मैं उन समस्त कर्मों की आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूं। इस शरीर के द्वारा मैंने कषायों का सेवन किया, क्रोध, मान, माया, लोभ स्वयं किया, कराया या करने वाले का अनुमोदन किया तो उसके लिए भी मैं आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूँ।

प्रभो! मैंने अपने मुख से परपीड़ाकारी वचन बोले तो उसके लिए मैं आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूँ। आज दिवस भर में चौरासी लाख जीवयोनी में किसी जीव को उठते-बैठते, हिलते-चलते दुःख दिया हो या उसकी हिंसा की हो तो उसके लिए आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूँ। उपरोक्त सभी कर्म मेरे इस देह ने किए। मैं जीवात्मा हूँ। मेरा स्वभाव केवल ज्ञाता-द्रष्टा है। सम्पूर्ण दिवस में मैं स्वभाव से विभाव में गया हूँ तो आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूँ। दिन-भर में कहीं पर भी मेरा भेद-विज्ञान छूट गया हो तो उसके लिए मैं आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूँ।

प्रभो! मैंने किसी की निन्दा की, करायी या उसका अनुमोदन किया हो। नींद में, प्रमाद में, स्वप्न में, स्वप्न के दोषों में जहां कहीं भी कर्म बंधन हुआ हो उसके लिए मैं अन्त:करण से क्षमा मांगता हूँ। आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूँ।

सुबह से लेकर अभी तक जो-जो भी कर्म किया, वह सारा इस विनाशी शरीर ने किया। समस्त कर्म को ज्ञाता व द्रष्टा भाव से आत्मा की साक्षी में स्वयं से भिन्न करता हूँ। जो कुछ भी किया, कराया, अनुमोदन किया, मन से, वचन से, काया से वह सब कुछ इस शरीर ने किया, मैं सिर्फ एक शुद्धात्मा हूँ। मैंने कर्म करते हुए कर्ताभाव लाया हो तो उसके लिए मैं आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूं। प्रभो! मुझे क्षमा करें! क्षमा करें! क्षमा करें!

ooo

प्रातः विधि

'शुद्धात्मा' के लक्ष्य सहित

वर्तमान तीर्थंकर

श्री सीमंधर स्वामी भगवान को मेरा नमस्कार ...(5)

आचार्य भगवन् को मेरा नमस्कार। ...(5)

प्राप्त मन, वचन, काया से

इस जगत के किसी भी जीव को

किंचित्मात्र भी दुःख न हो, न हो, न हो। ...(5)

केवल 'शुद्धात्मानुभव' के सिवा

इस जगत की कोई भी विनाशी चीज

'मुझे' नहीं चाहिए। ...(5)

तीर्थंकर भगवान की आज्ञा में ही

निरन्तर रहने की

परम शक्ति प्राप्त हो, प्राप्त हो, प्राप्त हो। ...(5)

तीर्थंकर भगवान का वीतराग-विज्ञान

यथार्थ रूप से सम्पूर्ण, सर्वांग

केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलचारित्र में

परिणमन हो, परिणमन हो, परिणमन हो। ...(5)

नमस्कार-विधि

- वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विचरते
  तीर्थंकर भगवान् 'श्री सीमंधर स्वामी' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में विचरते
  'ॐ' स्वरूप परमेष्ठि भगवंतों को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में विचरते
  'पंच परमेष्ठि भगवंतों' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में विराजमान
  'तीर्थंकर भगवंतों' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- 'वीतराग शासनदेव-देवियों' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- 'निष्पक्षपाती शासन देव-देवियों' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- 'चौबीस तीर्थंकर भगवंतों' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- 'सर्व कल्याणमूर्ति
  समकितधारी महात्माओं को'
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)

- समस्त ब्रह्माण्ड के 'जीवमात्र के सच्चे स्वरूप' को
  अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। ...(5)
- 'सच्चा स्वरूप' भगवत् स्वरूप है,
  अतः सारे जगत् को
  भगवंत स्वरूप में दर्शन करता हूं। ...(5)
- 'सच्चा स्वरूप' शुद्धात्म-स्वरूप है,
  अतः सारे जगत् को
  शुद्धात्म स्वरूप में दर्शन करता हूं। ...(5)
- 'सच्चा स्वरूप' तत्त्व स्वरूप है,
  अतः सारे जगत् को
  तत्त्वज्ञान के रूप में दर्शन करता हूं। ...(5)

ooo

अठारह भावनाएँ

1. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी देहधारी जीवात्मा के अहं को किंचित्मात्र भी ठेस न पहुंचे, न पहुंचाई जाए एवं ठेस पहुंचाने का अनुमोदन (समर्थन) न हो, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
2. हे वीतराग परमात्मा! मुझसे किसी भी धर्म के प्रमाण को किंचित्-मात्र ठेस न पहुंचे, न ठेस पहुंचाई जाए और न ठेस पहुंचाने का अनुमोदन हो, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
3. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी देहधारी उपदेशक, साधु, साध्वी, आचार्य का अवर्णवाद, अपराध, अविनय न करने की परम शक्ति आप मुझे दें।
4. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति किंचित्-मात्र भी अभाव-तिरस्कार मुझसे कभी न हो, न किसी के द्वारा कराया जाए या किसी कर्त्ता के प्रति ऐसा अनुमोदन न हो, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
5. आज तक मेरी प्रार्थनाएं इस संसार को पाने के लिए थीं क्योंकि मेरा लक्ष्य संसार था। आज मेरा लक्ष्य बदल गया तो मेरी प्रार्थनाएं बदल गईं। मेरा लक्ष्य सिद्धालय है।
6. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति मुझसे कभी भी कठोर भाषा या क्लेश उत्पन्न करने वाली भाषा न बोली जाए, न बुलवायी जाए, या किसी को वैसी भाषा बोलने का अनुमोदन भी न किया जाए, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
7. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति, चाहे वह स्त्री हो, पुरुष हो या नपुंसक हो, उसके प्रति किंचित्मात्र भी विषय-विकार संबंधी दोष, इच्छाएं, चेष्टाएं या विचार विषयक दोष मुझसे न किए जाएं, न कराए जाएं, और किसी कर्त्ता को वैसा करने का न अनुमोदन किया जाए, वैसी शक्ति आप मुझे दें।
8. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी रस में लुब्धभाव न हो, ऐसी शक्ति आप मुझे दें। समरसयुक्त भोजन मुझसे लिया जाए, ऐसी परम शक्ति दें।
9. हे वीतराग परमात्मा! किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, जीवन्त हो या मृत, किसी का भी किंचित्-मात्र भी अवर्णवाद (निंदा), अपराध या अविनय मुझसे न हो, न किसी से कराया जाए, और न किसी कर्त्ता को वैसा करने का अनुमोदन किया जाए, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।

10. हे वीतराग परमात्मा! आप मुझे जगत्कल्याण करने का निमित्त बनने की परम शक्ति दें, शक्ति दें, शक्ति दें।
11. इस संसार की किसी भी विनाशी चीज में मेरा आकर्षण न रहे, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
12. इस संसार के किसी विनाशी संबंध में मैं न अटकूं, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
13. साधना के दौरान मेरी नींद / मेरा आलस्य बाधक न बने, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
14. जीवन के सुख-दुःख को समता से स्वीकार कर मैं अपने घर लौटने का लक्ष्य रखूं, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
15. मैं इस जगत् के किसी जीव की निन्दा न करूं, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
16. मैं इस जगत् में किसी को गलत और सही का निर्णय न दूं, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
17. हजारों परीषह-उपसर्ग मुझ पर आएं पर मेरी आंख से एक भी आंसू न बहे, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।
18. मेरे सामने हजारों नृत्य भी हो रहे हों पर मैं ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रहूं, ऐसी परम शक्ति आप मुझे दें।

मैं शुद्धात्मा हूं।	(11)
मैं निश्चय निर्णय से केवल शुद्धात्मा ही हूं।	(2)
मुझे मेरे घर लौटना है।	(3)
मेरा घर सिद्धालय है।	(3)
मैं अपने घर निश्चित लौटूंगा।	(3)

इतनी हमें 'वीतराग परमात्मा' से प्रार्थना करनी है।
यह प्रार्थना प्रतिदिन पठन करने के साथ-साथ हृदय में धारण करने के लिए है।
ये भावनाएं प्रतिदिन निरन्तर उपयोगपूर्वक भावित करने के लिए हैं।
इतने पाठ में समस्त शास्त्रों का सार आ जाता है।

बारह भावनाएँ

1. अनित्य भावना (भरत महाराज)

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।1।।

भोर की स्वर्णिम छटा सम क्षणिक सब संयोग हैं।
पद्मपत्रों पर पड़े जलबिन्दु सम सब भोग हैं।।
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम लालिमा है भाल की।
सब पर पड़ी मनहूस छाया विकट काल कराल की।।1।।

अंजुली-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही।।
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा तरुण होती जा रही।।2।।

दु:खमयी पर्याय क्षणभंगुर सदा कैसे रहे।
अमर है ध्रुव आत्मा वह मृत्यु को कैसे वरे।।
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।3।।

संयोग क्षणभंगुर सभी पर आत्मा ध्रुवधाम है।
पर्याय लयधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है।।
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

2. अशरण भावना (अनाथी मुनि)

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोई न राखनहार।।2।।

छिद्रमय हो नाव डगमग चल रही मझधार में।
दुर्भाग्य से जो पड़ गई दुर्दैव के अधिकार में।।
तब शरण होगा कौन जब नाविक डुबो दे धार में।
संयोग सब अशरण शरण कोई नहीं संसार में।।1।।

जिन्दगी इक पल कभी कोई बढ़ा नहीं पायेगा।
रस रसायन सुत सुभट कोई बचा नहीं पायेगा।।
सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में।
जीवन-मरण अशरण-शरण कोई नहीं संसार में।।2।।

निज आत्मा निश्चय-शरण व्यवहार से परमात्मा।
जो खोजता पर की शरण वह आत्मा बहिरात्मा।।
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।3।।

संयोग हैं अशरण सभी निज आत्मा ध्रुवधाम है।
पर्याय व्ययधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है।।
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है।।4।।

3. संसार भावना (भगवान् मल्लिनाथ)

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान्।
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।3।।

दुःखमय निरर्थक मलिन जो सम्पूर्णतः निस्सार है।
जगजालमय गति चार में संसरण ही संसार है।।
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण संसार का आधार है।
संयोगजा चित्तवृत्तियाँ ही वस्तुतः संसार है।।1।।

संयोग हों अनुकूल फिर भी सुख नहीं संसार में।
संयोग को संसार में सुख कहें बस व्यवहार में।।
दुःख-द्वन्द्व हैं चित्तवृत्तियाँ संयोग ही जगफन्द है।
निज आत्मा बस एक ही आनन्द का रसकन्द है।।2।।

मंथन करे दिन-रात जल घृत हाथ में आवे नहीं।
रज-रेत पेले रात-दिन पर तेल ज्यों पावे नहीं।।
सद्भाग्य बिन ज्यों संपदा मिलती नहीं व्यापार में।
निज आत्मा के भान बिन त्यों सुख नहीं संसार में।।3।।

संसार है पर्याय में निज आत्मा ध्रुवधाम है।
संसार संकटमय परन्तु आत्मा सुखधाम है।।
सुखधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

4. एकत्व भावना (नमिराजर्षि)

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूं या जीव को, साथी सगो न कोय।।4।।

आनंद का रसकन्द सागर शान्ति का निज आत्मा।
सब द्रव्य जड़ पर ज्ञान का घनपिण्ड केवल आत्मा।।
जीवन-मरण सुख-दु:ख सभी भोगे अकेला आत्मा।
शिव-स्वर्ग नरक-निगोद में जावे अकेला आत्मा।।1।।

इस सत्य से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरात्मा।
पहिचानते निजतत्त्व जो वे ही विवेकी आत्मा।।
निज आत्मा को जानकर निज में रमे जो आत्मा।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमात्मा।।2।।

सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में।
संयोग हैं सर्वत्र पर साथी नहीं संसार में।।
संयोग की आराधना संसार का आधार है।
एकत्व की आराधना, आराधना का सार है।।3।।

एकत्व ही शिव सत्य है सौन्दर्य है एकत्व में।
स्वाधीनता सुख शान्ति का आवास है एकत्व में।।
एकत्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
एकत्व की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

5. अन्यत्व भावना (मृगापुत्र)

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर संपत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय॥5॥

जिस देह में आतम रहे वह देह भी जब भिन्न है।
तब क्या करें उनकी कथा जो क्षेत्र से भी अन्य हैं।।।
हैं भिन्न परिजन भिन्न पुरजन भिन्न ही धन-धाम हैं।
है भिन्न भगिनी भिन्न जननी भिन्न ही प्रिय वाम है।।1।।

अनुज-अग्रज सुत-सुता प्रिय सुहृद जन सब भिन्न हैं।
ये शुभ अशुभ संयोगजा चित्तवृत्तियाँ भी अन्य हैं।।
स्वोन्मुख चित्तवृत्तियाँ भी आत्मा से अन्य हैं।
चैतन्यमय ध्रुव आत्मा गुणभेद से भी भिन्न है।।2।।

गुणभेद से भी भिन्न है आनंद का रसकन्द है।
है संग्रहालय शक्तियों का ज्ञान का घनपिण्ड है।।
वह साध्य है आराध्य है आराधना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना का एक ही आधार है।।3।।

जो जानते इस सत्य को वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है।।
अन्यत्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
अन्यत्व की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

6. अशुचि भावना (सनत कुमार)

दीपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन-गेह॥6॥

जिस देह को निज जानकर नित रम रहा जिस देह में।
जिस देह को निज मानकर रच-पच रहा जिस देह में।।
जिस देह में अनुराग है एकत्व है जिस देह में।
क्षण एक भी सोचा कभी क्या-क्या भरा उस देह में।।1।।

क्या-क्या भरा उस देह में अनुराग है जिस देह में।
इस देह का क्या रूप है आत्म रहे जिस देह में।।
मलिन मल पल रुधिर कीकस वसा का आवास है।
जड़रूप है तन किन्तु इसमें चेतना का वास है।।2।।

चेतना का वास है दुर्गन्धमय इस देह में।
शुद्धात्मा का वास है इस मलिन कारागेह में।।
इस देह के संयोग में जो वस्तु पलभर आयेगी।
वह भी मलिन मल-मूत्रमय दुर्गन्धमय हो जायेगी।।3।।

किन्तु रह इस देह में निर्मल रहा जो आत्मा।
वह ज्ञेय है श्रद्धेय है बस ध्येय भी वह आत्मा।।
उस आत्मा की साधना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

7. आस्रव भावना (समुद्रपाल मुनि)

जगवासी घूमे सदा, मोह नींद के जोर।
सब लुटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुं ओर॥7॥

संयोगजा चित्तवृत्तियाँ भ्रमकूप आस्रवरूप हैं।
दु:खरूप हैं दु:खकरण हैं अशरण मलिन जड़रूप हैं।।
संयोग विरहित आत्मा पावन शरण चिद्रूप है।
भ्रमरोगहर संतोषकर सुखकरण है सुखरूप है।।1।।

इस भेद से अनभिज्ञता मद-मोह मदिरा पान है।
इस भेद को पहिचानना ही आत्मा का भान है।।
इस भेद की अनभिज्ञता संसार का आधार है।
इस भेद की निज भावना ही भवजलधि का सार है।।2।।

इस भेद से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरात्मा।
जो जानते इस भेद को वे ही विवेकी आत्मा।।
यह जानकर पहिचानकर निज में जमे जो आत्मा।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमात्मा।।3।।

हैं हेय आस्रवभाव सब श्रद्धेय निज शुद्धात्मा।
प्रिय ध्येय निश्चय ज्ञेय केवल श्रेय निज शुद्धात्मा।।
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

8. संवर भावना (हरिकेशी मुनि)

मोह नींद जब उपशमे, सतगुरु देय जगाय।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय॥8॥

देह-देवल में रहे पर देह से जो भिन्न है।
है राग जिसमें किन्तु जो उस राग से भी अन्य है।।
गुणभेद से भी भिन्न है पर्याय से भी पार है।
जो साधकों की साधना का एक ही आधार है।।1।।

मैं हूँ वही शुद्धात्मा चैतन्य का मार्तण्ड हूँ।
आनंद का रसकन्द हूँ मैं ज्ञान का घनपिण्ड हूँ।।
मैं ध्येय हूँ, श्रद्धेय हूँ, मैं ज्ञेय हूँ, मैं ज्ञान हूँ।
बस एक ज्ञायकभाव हूँ मैं ही स्वयं भगवान हूँ।।2।।

यह जानना पहिचानना ही ज्ञान है श्रद्धान है।
केवल स्वयं की साधना आराधना ही ध्यान है।।
यह ज्ञान यह श्रद्धान बस यह साधना आराधना।
बस यही संवरतत्त्व है, बस यही संवरभावना।।3।।

इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है।।
शुद्धात्मा को जानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

9. निर्जरा भावना (अर्जुनमाली)

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार॥9॥

शुद्धात्मा की रुचि संवर साधना है निर्जरा।
ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना है निर्जरा॥
निर्मम दशा है निर्जरा निर्मल दशा है निर्जरा।
निज आत्मा की ओर बढ़ती भावना है निर्जरा॥1॥

वैराग्यजननी राग की विध्वंसनी है निर्जरा।
है साधकों की संगिनी आनन्दजननी निर्जरा॥
तप-त्याग की सुख-शान्ति की विस्तारनी है निर्जरा।
संसार पारावर पार उतारनी है निर्जरा॥2॥

निज आत्मा के भान बिन है निर्जरा किस काम की।
निज आत्मा के ध्यान बिन है निर्जरा बस नाम की॥
है बंध की विध्वंसनी आराधना ध्रुवधाम की।
यह निर्जरा बस एक ही आराधकों के काम की॥3॥

इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है॥
शुद्धात्मा की साधना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है॥4॥

10. लोक भावना (शिव राजर्षि)

चौदह राजु उत्तुंग नभ, लोक पुरुष संठान।
ता में जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान।।10।।

निज आत्मा के भान बिन षट्द्रव्यमय इस लोक में।
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण करता रहा त्रैलोक्य में।।
करता रहा नित संसरण जगजालमय गति चार में।
समभाव बिन सुख रंच भी पाया नहीं संसार में।।1।।

नर नरक स्वर्ग निगोद में परिभ्रमण ही संसार है।
षट्द्रव्यमय इस लोक में बस आत्मा ही सार है।।
निज आत्मा ही सार है स्वाधीन है सम्पूर्ण है।
आराध्य है सत्यार्थ है परमार्थ है परिपूर्ण है।।2।।

निष्काम है निष्क्रोध है निर्मान है निर्मोह है।
निर्द्वन्द्व है निर्दण्ड है निर्ग्रन्थ है निर्दोष है।।
निर्मूढ है नीराग है आलोक है चिल्लोक है।
जिसमें झलकते लोक सब वह आत्मा ही लोक है।।3।।

निज आत्मा ही लोक है निज आत्मा ही सार है।
आनन्द-जननी भावना का एक ही आधार है।।
यह जानना पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

11. बोधिदुर्लभ भावना (भगवान् ऋषभदेव के 98 पुत्र)

धन जन कंचन राज सुख, सबहिं सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान।।11।।

इन्द्रियों के भोग एवं भोगने की भावना।
है सुलभ सब, दुर्लभ नहीं है इन सभी का पावना।।
है महादुर्लभ आत्मा को जानना पहिचानना।
है महादुर्लभ आत्मा की साधना आराधना।।1।।

नर देह उत्तम देश पूरण आयु शुभ आजीविका।
दुर्वासना की मंदता परिवार की अनुकूलता।।
सत् सज्जनों की संगती सद्धर्म की आराधना।
है उत्तरोत्तर महादुर्लभ आत्मा की साधना।।2।।

जब मैं स्वयं ही ज्ञेय हूँ जब मैं स्वयं ही ज्ञान हूँ।
जब मैं स्वयं ही ध्येय हूँ जब मैं स्वयं ही ध्यान हूँ।।
जब मैं स्वयं आराध्य हूँ जब मैं स्वयं आराधना।
जब मैं स्वयं ही साध्य हूँ जब मैं स्वयं ही साधना।।3।।

जब जानना पहिचानना निज साधना आराधना।
है बोधि है तो सुलभ ही है बोधि की आराधना।।
निज तत्त्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है।।4।।

12. धर्म भावना (धर्मरुचि अणगार)

जांचे सुर तरु देय सुख चिन्तित चिंता रैन।
बिन जांचे बिन चिंतिये, धर्म सकल सुख दैन॥
धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥12॥

निज आत्मा को जानना पहिचानना ही धर्म है।
निज आत्मा की साधना आराधना ही धर्म है॥
शुद्धात्मा की साधना आराधना का मर्म है।
निज आत्मा की ओर बढ़ती भावना ही धर्म है॥1॥

कामधेनु कल्पतरु संकटहरण बस नाम के।
रतन चिन्तामणि भी हैं चाह बिन किस काम के॥
भोग-सामग्री मिले अनिवार्य है पर याचना।
है व्यर्थ ही इन कल्पतरु चिन्तामणि की चाहना॥2॥

धर्म ही वह कल्पतरु है नहीं जिसमें याचना।
धर्म ही चिन्तमणि है नहीं जिसमें चाहना॥
धर्मतरु से याचना बिन पूर्ण होती कामना।
धर्म चिन्तामणि है शुद्धात्मा की साधना॥3॥

शुद्धात्मा की साधना अध्यात्म का आधार है।
शुद्धात्मा की भावना ही भावना का सार है॥
वैराग्य-जननी भावना का एक ही आधार है।
ध्रुवधाम की आराधना, आराधना का सार है॥4॥

वीतराग-सामायिक : संकल्प और साधना

आपका स्वागत है साधना के इस मंदिर में। साधना की पिपासा आपके हृदय में अनुभव कर मैं गद्‌गद हूं। द्रव्य सामायिक के प्रतीक वस्त्र, मुखवस्त्रिका आदि आपने धारण कर लिए हैं। आप भाव सामायिक में प्रवेश हेतु तैयार हैं। पद्‌मासन, अर्द्धपद्‌मासन या सुखासन में बैठ जाइए। कमर, गर्दन और सिर एक सीध में रखें। आंखें बन्द कर लें।

आप मेरे शब्दों को सुनेंगे और भाव की नाव में सवार होकर समभाव के सागर में विहार करते हुए भावातीत अवस्था को उपलब्ध होंगे।

भाव करें कि आप अशान्त संसार से पीठ फेरकर अपने शांत, परम शांत आत्मालय में प्रवेश कर रहे हैं। आपका पूरा शरीर शान्त, विचार शान्त, मन शांत, चारों ओर शांति और समृद्धि का वातावरण है।

अनुभव करें, आपके लिए पूरी सृष्टि शान्त है। सिर के सिरे से पांव के अंगूठे तक अपने शरीर को एक बार देख लें। Relex your body completely from Top to toe and toe to top.

सिर का सिरा, बुद्धि, बुद्धि का सारा ज्ञान शान्त, मस्तिष्क शांत स्थिर, दोनों आंखें, आंखों के मध्य के गोलक, पुतलियां शांत। दोनों कान, दोनों नासिका, दांत, होंठ, दोनों गालें, ठोडी, पूरा मस्तिष्क और पूरा सिर शांत हो गया है। कहीं कोई तनाव है तो उसे दूर कर दें। कण्ठ, गर्दन, दोनों कंधे, दोनों बाजु, दोनों कोहनी, दोनों हाथ शांत और स्थिर हो गए हैं। शरीर के निचले भाग से मन को गुजारते हुए–दोनों जंघाएं, दाएं-बाएं दोनों घुटने, दायीं-बायीं दोनों टांगें, दोनों पांव, एडी, पंजा, टखना, अंगुठा और अंगुलियां शांत और स्थिर। पूरे शरीर को देख लें, शांत और स्थिर, श्वास भी शांत हो रही है। विचार भी शांत, मन भी शांत, चारों ओर वातावरण भी शांत है।

यह ध्यान अभेद की साधना है, तीर्थंकरों की साधना है, शरीर और आत्मा की भिन्नता की साधना है। इस आत्मा ने अनन्त-अनन्त काल से

अनन्त-अनन्त योनियों को धारण किया है। यह जीवात्मा अनन्त काल से जन्म और मरण के अनन्त प्रवाह में डूबा हुआ है। यह आत्मा कभी नरक में गई तो कभी स्वर्ग में, कभी मनुष्य भव में आई तो कभी पशु भव में भटकी। इसने चौरासी लाख जीव योनियों में अनन्त-अनन्त बार भ्रमण किया है।

इस भ्रमणा का मूल कारण है शरीर और मन की गुलामी। हमने शरीर को ही स्व मान लिया है, जन्म-जन्म में हम शरीर को स्व मानते रहे हैं परन्तु प्रत्येक जन्म में शरीर को हम छोड़ते रहे हैं। नए-नए शरीर हमारी आत्मा धारण करती रही है। जिसे हम पुनः-पुनः छोड़ते रहे हैं उसे हमने पुनः-पुनः महत्व दिया, सारभूत माना। आज भी हम शरीर से जुड़कर जी रहे हैं, शरीर को ही स्व मान रहे हैं। साथ ही यह भी हमें पता है कि निश्चय नय से यह शरीर हमारा नहीं है। मैं कोई और हूं, शरीर कोई और है। शरीर मृत है, जड़ है, पुद्गलों का संयोजन है। मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा हूं। स्वयं को विस्मृत हो जाने के कारण से ही मैं शरीर को स्व मान रहा हूं। यही मेरा अज्ञान है, और यही मेरी जन्म-मरण परम्परा का मूल स्रोत है।

स्मरण रखें, सारे आकर्षण, सारे मोह और सारी वासनाएं शरीर की हैं, आत्मा तो मात्र ज्ञाता और द्रष्टा भाव में है।

अनुभव करें-शरीर मेरा नहीं है, शरीर से संबंधित मुझे माता-पिता से जो नाम मिला है वह भी मैं नहीं हूं। क्योंकि जो अनित्य है, नश्वर है, बदल रहा है, वह मेरा कैसे हो सकता है? नाम के साथ-साथ जो संबंध बने हैं-माता, पिता, भाई, बहन, पति, पत्नी आदि, ये सभी शरीर के संबंध हैं। शरीर मेरा नहीं है तो ये संबंध भी मेरे नहीं हो सकते। अनादिकाल से हमने मिथ्यात्व का सेवन किया है। हमने संबंध शरीर के बनाए हैं। जब हम कहते हैं-मैं, मैं शिव मुनि, मैं साधु, मैं श्रावक। यह व्यवहार दृष्टि है। निश्चय दृष्टि में न तुम कोई नाम हो, न शरीर हो, न स्त्री हो, न पुरुष हो, न देव हो, न देवी हो, न पशु, न नारकीय, न अन्य कोई। तुम एक शुद्ध आत्मा हो। आत्मा अजर है, अमर है, अखण्ड है, अभेद है, अरूपी है, असंग है, अक्षय है, अमूर्त्त है, अच्युत है।

मैं अजर, अमर और अजन्मा हूं। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हूं। परन्तु शरीर के मोह के कारण, शरीर के आकर्षण के कारण इस आत्मा को अनन्त-अनन्त बार जन्म और मरण के चक्कर में घूमना पड़ा।

अपने भीतर अनुभव करें कि मैं शुद्धात्मा हूं। मैं शरीर नहीं हूं, मेरा नाम नहीं है, मैं पुरुष नहीं हूं, मैं स्त्री नहीं हूं, मैं मुनि नहीं हूं, मैं साध्वी नहीं हूं, मैं श्रावक-श्राविका नहीं हूं, मैं केवल एक शुद्धात्मा हूं। सारे संबंध विच्छेद कर दें इस क्षण में। अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप में स्थिर हो जाएं।

भगवान् महावीर ने कहा—आत्मज्ञानी बनो, आत्मद्रष्टा बनो। भगवान् के समस्त उपदेश का सार आत्मद्रष्टा बनने के लिए प्रेरित करता है। भगवान् के प्रवचन के अनुसार—मेरी आत्मा अजर है, अमर है, शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, जो अरिहंतों की आत्मा है वही मेरी आत्मा है, जो बुद्धों की आत्मा है वही मेरी आत्मा है। जो भेद है वह मात्र कर्म का है। आत्मा पर लगे कर्ममल को धोना है। कर्मों से स्वयं को अलग कर लेना है। हर श्वास में, हर पल में, हृदय की प्रत्येक धड़कन में, खून के कतरे-कतरे में इस भाव से भावित होना है कि मैं शुद्ध आत्मा हूं।

कुछ देर अपना सारा ध्यान आते-जाते श्वास पर रखें, आप हर श्वास के साथ सोऽहं की ध्वनि को जोड़ लें। अपने शरीर को स्थिर कर लें, आंखें बन्द रखें। बहुत कठिनाई हो तो धीरे से आसन बदल भी सकते हैं। हर श्वास में दोहराएंगे—सोऽहं...सोऽहं...सोऽहं...सोऽहं...सोऽहं...सोऽहं...सोऽहं...। श्वास भीतर आए तो 'सो', और बाहर जाए तो 'हं'। हर श्वास के साथ सोऽहं की ध्वनि बनी रहे। आप शरीर के समस्त संबंधों से मुक्त हो रहे हैं। स्मरण रखें, आप किसी के गुरु नहीं हैं, शिष्य नहीं हैं, माता नहीं हैं, पिता नहीं हैं, पुत्र नहीं हैं, पुत्री नहीं हैं। समस्त संबंधों से परे आप एक शुद्ध और सुनिर्मल आत्मा हैं। जो अरिहंतों की आत्मा है वही आपकी आत्मा है। जो तीर्थंकर महावीर और तीर्थंकर सीमंधर स्वामी की आत्मा है वही आपकी आत्मा है।

आप जहां हैं वह आपका घर नहीं है। यह तो एक धर्मशाला है। धर्मशाला का उपयोग रात-भर रुकने के लिए होता है। उसे घर मान लेना उचित नहीं है। आपका घर सिद्धालय है। आपको मोक्ष जाना है। आपको परमात्मा होना है। परमात्मा होना आपका आत्यंतिक अधिकार है। **अप्पा सो परमप्पा।** आपकी आत्मा ही परमात्मा है।

आपने द्रव्य सामायिक तो बहुत बार की है। वर्तमान में आप वीतराग

सामायिक की आराधना कर रहे हैं। वीतराग सामायिक अर्थात् शुद्ध सामायिक। शुद्ध सामायिक ही ध्यान है और ध्यान ही शुद्ध सामायिक है।

अरिहंत परमात्मा श्री सीमंधर स्वामी को त्रिकाल नमस्कार। नमस्कार! नमस्कार! सोऽहं की ध्वनि चलती रहे। किसी विचार को महत्त्व न दें। विचार शरीर के हैं, मन भी शरीर से संबंधित है, बुद्धि भी शरीर से संबंधित है। रोग भी शरीर के हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकार, कामना, वासना, धारणा सब शरीर की हैं। हमें शरीर को महत्व नहीं देना है। समस्त वासनाओं और कामनाओं को शरीर का अंग जानकर छोड़ देना है। आत्मा केवल जानने और देखने वाली है। आत्मा का निज गुण केवल जानना और देखना है। केवली भगवान् की आत्मा जानती और देखती है। ऐसे ही आपकी आत्मा भी जानती और देखती है। प्रतिक्रिया करना आत्मा का निजगुण नहीं है। जहां प्रतिक्रिया है वहां कर्मों का बंधन है। यह संसार व्यवस्थित चल रहा है। अरिहंत-भगवंतों ने संसार की व्यवस्था में कोई दखलंदाजी नहीं की। उनके जीवन में जो भी उपसर्ग आए, परीषह आए, उन्होंने समता भाव से सहन किया।

ध्यान करते समय आपको कष्ट भी आ सकता है। आपका मन आपको परेशान कर सकता है। क्योंकि ध्यान मन के स्वाद का विषय नहीं है। मन तर्क दे सकता है कि व्यर्थ समय बरबाद कर रहे हो। यदि आपमें साधना का उत्साह है तो मन के तर्क-वितर्क पर ध्यान न दें। सारे तर्क-वितर्क, सारे विचार मन के हैं, बुद्धि के हैं। धारणा के हैं। मन लगे न लगे, मन को एक ओर रख दीजिए! अपने भीतर इस भाव को सघन कीजिए कि मैं शुद्ध आत्मा हूं, मैं शुद्ध आत्मा हूं, मैं शुद्ध आत्मा हूं। निरंतर सोऽहं का ध्यान करते रहें। अभ्यास से स्वतः होने लगता है। श्वास भीतर आए तो 'सो', बाहर जाए तो 'हं', सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं, कुछ करना नहीं है। स्वतः होने लगता है।

'सो' अर्थात् वह सिद्ध शुद्ध आत्मा, 'हं' अर्थात् मैं। सोऽहं अर्थात् मैं सिद्ध भगवान् के तुल्य हूं, वह जो है वही मैं भी हूं। उसमें और मुझमें किंचित् भी मौलिक भेद नहीं है। जो भेद है वह मात्र कर्म के आवरण का भेद है। उन्होंने उस आवरण को उतार दिया है, मैं अभी आवरण में हूं। इतना ही भेद है। शेष अभेद ही अभेद है। समरसता और समस्वरता है।

विश्व के समस्त प्राणियों की चेतना मेरी चेतना के समान है। इसलिए प्रत्येक प्राणी के लिए मंगल की भावना, मैत्री की भावना, करुणा की भावना रखो! पूर्ण मंगल की भावना रखो!

भगवान् महावीर ने कहा–जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है, जिसे बचाना चाहता है वह तू ही है।

एगो मे सासओ अप्पा, णाण दंसण संजुओ।
सेसा से बहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा॥

एक मेरी आत्मा शाश्वत है। ये प्रभु महावीर के वचन हैं। समस्त तीर्थंकरों की वाणी का एक ही सार, एक ही स्वरूप है कि मेरी आत्मा ज्ञान-दर्शन से युक्त है। समस्त वस्तुएं बाहर की हैं। समस्त संयोग, वियोग लक्षण वाले हैं। यह शरीर मिट्टी का पुतला है और मिट्टी में मिल जाने वाला है। विचारों का कोई भरोसा नहीं, प्रतिपल-प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। सुबह उठते हैं तो विचार कुछ होते हैं, दोपहर में कुछ होते हैं और संध्या में कुछ होते हैं। किसे अपना विचार मानोगे?

किसी दार्शनिक मान्यता को महत्व नहीं देना। 'मैं एक शुद्ध आत्मा हूं' इस भाव से स्वयं को भावित रखिए! मेरी आत्मा में परमात्मा प्रकट होगा, मेरी आत्मा मोक्ष को उपलब्ध होगी। अरिहंत-अवस्था से कम मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। इन्द्र-पद की मुझे आवश्यकता नहीं। बुद्धत्व के समक्ष इनका कुछ मूल्य नहीं।

(कमर, पीठ, गर्दन सीधी रहे तो श्रेष्ठ है।)

अगर आपका मन शांत है तो 'सोऽहं' को भी छोड़ सकते हैं। केवल शांति में रहें। कोई विचार नहीं, कोई संकल्प-विकल्प नहीं। आपकी आत्मा आनन्दरूपा है, परम स्वरूपा है। उक्त भावदशा में बैठ जाएं।

विचार उद्वेलित करें तो सोऽहं की ध्वनि का आश्रय ले लें। अन्य आश्रय न तलाशें। समस्त पकड़ छोड़ दें। बाह्य जगत् में पकड़ने जैसा कुछ भी नहीं है। आप अपने भीतर परम समृद्ध हैं। परम आत्मा हैं आप। परमात्मा आपका स्वभाव है। परमात्मा होना आपकी नियति है।

आनंद रूपम्

आनंद रूपं, परमात्म तत्वं,
समस्त संकल्प-विकल्प मुक्तं।
स्वभाव लीना निवसंति नित्यं,
जानाति योगी स्वयमेव तत्वम्।

हे देव! मेरी है यही प्रार्थना,
हे देव अरिहंत परमात्मा!
तेरे चरणों में आके झुक जाऊं मैं,
हे देव! मेरी है यह प्रार्थना।

अपनी कृपा का वरद्हस्त तुम देना,
मेरी भूलों को अंतःकरण से क्षमाना।
प्रभो! तुम तो करुणा के सागर,
मैं जन्मों-जन्मों का भटका हुआ हूं।

हे देव! मेरी है यह प्रार्थना,
मुझे अपनी ही शरण में रख लेना।
अपने चरणों का चाकर बना लेना,
हे प्रभु! मेरी है यही प्रार्थना।।

अरिहंत परमात्मा सीमंधर स्वामी प्रभु! आप विराजमान हैं महाविदेह क्षेत्र में। कितना सौभाग्य है वहां के लोगों का! आपकी चरण-शरण में हैं। कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान प्रभु! आप विश्व को दया दे रहे हो, ज्ञान दे रहे हो, ध्यान दे रहे हो, आपकी शरण में देवी, देवता, इन्द्र, राजा, महाराजा, साधु, साध्वी, मनुष्य, तिर्यंच, पशु, पक्षी–सब लाभान्वित हो रहे हैं, आपके समवसरण में आपकी दिव्य वाणी सुन रहे हैं, आपके दिव्य ललाट का दर्शन कर रहे हैं, आप द्वारा प्ररूपित धर्मध्यान में रमण कर रहे हैं और अनन्त-अनन्त कर्मरज को आत्मा से पृथक् कर रहे हैं।

प्रभु! मेरी आराधना है, प्रार्थना है, प्यास है, मैं जीऊं या मरूं पर आपकी भक्ति को न विसरूं! आपके ध्यान में अहर्निश संलग्न रहूं! आपकी भक्ति के बिना मेरी एक श्वास भी वृथा न जाए! तीनों लोकों की दौलत और साम्राज्य आपकी चरण-रज के समक्ष फीका है! प्रभो! मुझे अपने समवसरण में बुला लो, मुझे अपने चरणों का चाकर बना लो! मेरी आत्मा कर्ममल से अशुद्ध है, आप शुद्ध कर दो! मैं निष्पाप हो जाऊं। निर्मल हो जाऊं। हे प्रभु! आप चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल और सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान हैं। मुझे भी वैसी ही निर्मलता और रोशनी प्रदान करें।

ध्यान में इस प्रकार भक्ति के भाव भी आप रख सकते हैं–

अमर आत्मा सच्चिदानंद मैं हूं,
शिवोऽहं शिवोऽहं शिव स्वरूपोऽहं।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूं,
शिवोऽहं शिवोऽहं शिव स्वरूपोऽहं।
जिसे शस्त्र काटे न अग्नि जलाए,
गलाए न पानी, न मृत्यु मिटाए।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूं,
अमर आत्मा सच्चिदानंद मैं हूं,
शिवोऽहं शिवोऽहं शिव स्वरूपोऽहं।।

मैं अजर हूं, अमर हूं, सिद्ध हूं, सत् हूं, चित् हूं, निरंजन हूं, अविनाशी हूं। शरीर की भूलों के कारण मेरी आत्मा जन्म-मरण के चक्कर में फंसी है। आज से मैं शरीर के समस्त आकर्षणों को तोड़ डालूंगा। मन की किसी भी

वासना के पराधीन नहीं बनूंगा। समस्त सृष्टि के संबंध एक तरफ और मेरी आत्मा का परमात्मा से संबंध एक तरफ। मैं आज से, इसी क्षण से अपनी आत्मा को महत्व दूंगा। भोजन मिले या न मिले, कोई सम्मान करे या अपमान करे, जीवन रहे या न रहे, कोई चिन्ता नहीं। कोई अपमान करे तो उसका भला, कोई सम्मान करे तो उसका भला। ये सब मान-सम्मान शरीर के हैं, बुद्धि के हैं। आत्मा मान और अपमान के भाव से मुक्त है। वह शुद्ध और निरंजन है। समस्त भावों, प्रभावों और विभावों से स्वतंत्र है।

भेद ज्ञान साबुन भयो, समता रस भर नीर।
अंतर् धोबी आत्मा, धोवे निज गुण चीर॥

भेदज्ञान अर्थात् शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं। मेरी आत्मा शुद्ध और बुद्ध है, यह भेद ज्ञान है। आप वस्त्र को धोते हैं तो साबुन और जल चाहिए। ऐसे ही भेदज्ञान की साबुन और समता के जल से अपनी आत्मा को निर्मल बनाओ। कैसी भी स्थिति में अपनी समता को खण्डित न होने दो। मेरी समता पुष्ट होती रहे, पुष्ट होती रहे।

अंतर् धोबी आत्मा....। यह आत्मा ही धोने वाली है, और जिसे धोना है वह चीर भी स्वयं आत्मा ही है। आत्मा पर जो अशुद्धि की परतें आ गई हैं, कर्मों की जो धूल चढ़ गई है, उसे अपनी आत्मा के ही भेदज्ञान और समता के साबुन-पानी रूप अतिशयों से शुद्ध करना है। बाह्य अशुद्धि के नीचे परम शुद्ध आत्मा का निवास है। स्व-स्वरूप के भीतर आत्मा परम शुद्ध है, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनंत दर्शन की त्रिवेणी उसमें सतत प्रवाहित है। मध्य के आवरणों को हटाना भर है। उसी का नाम निर्जरा है।

अपने सम्यक् पुरुषार्थ को जगाइए! अपने सम्यक् संकल्प को वर्धमान कीजिए! संकल्प कीजिए कि मुझे दो सामायिक तो प्रतिदिन करनी ही हैं। अधिक समय मिले तो तीन करो, पांच करो। परन्तु शुद्ध सामायिक करो।

अब हम अरिहंत परमात्मा श्री सीमंधर स्वामी को नमन करेंगे। पहले मैं बोलूंगा, फिर आप उसे दोहराएंगे। स्मरण रहे, इस नमन-वंदन में हमारी जिह्वा ही न बोले, हमारा हृदय बोले। नमन के इन पदों में हमारा समग्र अस्तित्व अनुस्यूत और निबद्ध हो जाए। अरिहंत देव की आकृति हमारे समक्ष रहे। प्राण-प्राण से भक्ति का प्रवाह उमड़ पड़े।

निश्चय व्यवहार वीतराग विधि

अहो अरिहंत परमात्मा सीमंधर स्वामी!
आपको त्रिकाल नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!
हे नीरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंद स्वरूप!
सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी, त्रैलोक्यप्रकाशक!
शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन-स्वरूप!
परम ज्योति सुखधाम हे वीतरागी परमात्मा!
मैं निश्चय-निर्णय से केवल शुद्धात्मा हूं। (3)
मुझे आपकी अपूर्व शक्ति दें। (5)
मुझे निरन्तर शुद्धात्मा का स्मरण दें।
आपका अखण्ड निदिध्यासन दें।
आपका अखण्ड सान्निध्य दें।
आपके सर्वोत्कृष्ट सद्गुण
मुझमें उत्कृष्टता के साथ स्फुरायमान हों। (3)
हे विश्ववंद्य प्रकट शुद्धात्मा स्वरूप प्रभो!
आप इस प्रवर्तमान काल के लिए
दूसरे तीर्थंकर
आप ही मेरे प्रकट शुद्धात्मा हैं।
आपमें जैसा आत्मा प्रवर्तमान है वैसा ही आत्मा का प्रवर्तन मुझमें हो।
मेरे मन और बुद्धि सर्वथा आपके अधीन प्रवर्तन करें।
समस्त विश्व की विस्मृति और सिर्फ एक आपकी ही स्मृति मुझे प्राप्त हो।
भावरूप से केवल शुद्धात्मानुभव के सिवा
इस जगत की कोई भी विनाशी चीज मुझे नहीं चाहिए।
मैं क्षण-प्रतिक्षण सदैव सर्वथा स्वसत्ता में रहकर
स्वयं का ही उपभोग करूं
और परसत्ता में कभी भी प्रवेश न करूं,
मेरे इस दृढ़ निर्णय-निश्चय को पूर्ण करें।

हे विश्ववंद्य प्रकट शुद्धात्मा स्वरूप प्रभो!
मेरे सर्व प्रकार के दोषों के लिए मुझे क्षमा कीजिए। (3)
दया दें, शांति दें, समता दें,
सत्य दें, त्याग दें, वैराग्य दें।
संसार-भोग के आरम्भकाल से
आज के दिन के इस क्षण तक
मैंने इस जगत के जीवों की
कुछ भी शंका-कुशंका की हो, कराई हो या अनुमोदना की हो,
कोई भी अपराध किये हों, कराये हों या उनका अनुमोदन किया हो,
किसी भी प्रकार की विराधनाएं की हों, कराई हों या उनका अनुमोदन किया हो,
कोई भी अंतराय किये हों, कराये हों या करने वाले का अनुमोदन किया हो,
पांच महाव्रत, छठे रात्रि-भोजन का भंग करके अठारह पाप स्थानकों संबंधी मैंने कुछ भी अविनय, अविवेक, अभक्ति, अपकार्य या दोष जाने-अनजाने किए हों, कराये हों, या कर्त्ता के प्रति अनुमोदन किया हो, तो उन सभी दोषों के लिए मैं क्षमा-याचना करता हूं।,
आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान करता हूं
मुझे क्षमा करें। (3)
हे विश्ववंद्य प्रकट शुद्धात्मा स्वरूप प्रभो!
आप नीरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंद स्वरूप,
सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी, त्रैलोक्य-प्रकाश हैं।
मैं भावकर्म, नोकर्म, द्रव्यकर्म, मन-वचन-काया
अपने नाम की सर्व माया
आप प्रकट परमात्म-स्वरूप प्रभो के
सु-चरणों में समर्पित करता हूं। (3)
मैं चैतन्यघन स्वरूपी शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं अरूपी हूं। (3)
मैं असंग हूं। (3)

मैं अक्षय हूं। (3)
मैं अमूर्त हूं। (3)
मैं अच्युत हूं। (3)
मैं अजन्मा हूं। (3)
मैं अमर हूं। (3)
मैं जन्म-मरण से मुक्त शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं अव्याबाध-स्वरूपी हूं। (3)
मैं परमानंद सुख स्वरूप वाला हूं। (3)
मैं टंकोत्कीर्णवत् शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं स्व-पर प्रकाशक शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं 'सिद्ध भगवान' जैसा शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं 'ऋषभदेव भगवान' जैसा शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं 'महावीर भगवान' जैसा शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं 'अरिहंत भगवान' जैसा शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं 'श्री केवली भगवान' जैसा शुद्धात्मा हूं। (3)
मैं परम ज्योतिस्वरूप सिद्ध भगवान हूं। (3)
मैं अनंत ज्ञान वाला हूं। (3)
मैं अनंत दर्शन वाला हूं। (3)
मैं अनंत शक्ति वाला हूं। (3)
मैं अनंत सुख का धाम हूं। (3)
मैं अगुरु-लघु स्वभाव वाला हूं।
क्रोध, मान, माया, लोभ लघु-गुरु स्वभाव के ही हैं। (3)
द्रव्य दृष्टि से मैं सम्पूर्ण शुद्ध हूं, सर्वांग शुद्ध हूं। (3)
ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुणों से मैं सम्पूर्ण शुद्ध हूं। (3)
अनंत ज्ञेयों को जानने में परिणमित अनंत अवस्थाओं में
मैं सम्पूर्ण शुद्ध हूं, सर्वांग शुद्ध हूं। (3)
मैं अविनाशी हूं। (3)
मैं अव्यय हूं। (3)
मैं सूक्ष्म हूं। (3)

मैं केवल निर्विकल्प वीतराग ज्ञानमात्र हूं। (3)
मैं निर्मल अखूट परमानंद स्वरूपी हूं। (3)
मैं सर्व संसार के द्रव्यों से सर्वथा उदासीन हूं। (3)
सूर्य के समान तेजस्वी और
चन्द्र के समान शीतल हे वीतरागी परमात्मा!
समस्त लेपायमान भावों से मैं सर्वथा निर्लिप्त शुद्धात्मा हूं। (3)
मन, वचन, काया की समस्त संगी क्रियाओं से
मैं बिल्कुल असंग हूं। (3)

मन, वचन, काया की आदतें और उनके स्वभाव को मैं जानता हूं।
साथ ही मेरे स्व-स्वभाव को भी जानता हूं। (3)
मन, वचन, काया से सम्पूर्ण भिन्न मैं शुद्धात्मा हूं। (3)
स्थूलतम से सूक्ष्मतम तक की समस्त सांसारिक अवस्थाओं का
मैं ज्ञाता-द्रष्टा मात्र हूं, टंकोत्कीर्ण हूं, आनंद स्वरूप हूं। (3)

आहारी आहार करता है और मैं निराहारी सिर्फ उसे जानता हूं। (3)
विहारी विहार करता है और मैं निरविहारी सिर्फ उसे जानता हूं। (3)
शरीर क्रिया करता है और मैं केवल उसे जानता हूं। (3)
अवस्था मात्र कुदरती रचना है,
जिसके रचयिता कोई भी नहीं हैं और यह 'व्यवस्थित' है। (3)

मन, वचन, काया की एकता
जो महाविदेह क्षेत्र के जीवों में है वही मुझमें है। (3)
आपकी वृत्ति ही मेरी वृत्ति हो। (3)
आपकी दृष्टि ही मेरी दृष्टि हो। (3)
आपकी दृष्टि में जो स्थान गणधर गौतम का था
वही स्थान गौशालक का था। (3)
आपका स्वभाव ही मेरा स्वभाव हो। (3)
आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुख
ही मेरे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुख हों। (3)

हे विश्ववंद्य प्रकट शुद्धात्मा स्वरूप प्रभो!
मुझे एवं सभी कल्याणमूर्ति समकितधारक महात्माओं को
तीव्र ज्ञानदशा प्राप्त हो, सम्पूर्ण अर्पणता प्राप्त हो,
सम्पूर्ण अभेदत्व प्राप्त हो, सम्पूर्ण का अर्थ न राग न द्वेष
प्रबल पुरुषार्थ प्राप्त हो।
सभी कल्याणमूर्ति समकितधारक महात्माओं के शुद्धात्मा को
अत्यंत भक्तिभावपूर्वक अभेदभाव से
बार-बार त्रिकाल नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार करते हुए
इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि
समताभाव से मैंने जो निर्णय-निश्चय किया है
कि मुझे शुद्धात्मानुभव प्राप्त हो
और वह प्राप्त होने में
सभी कल्याणमूर्ति समकितधारक महात्माओं के सर्वोत्कृष्ट सद्गुण
मुझमें उत्कृष्टता के साथ स्फुरित होकर मुझे शक्तिमान बनायें। (3)
समस्त विश्व का कल्याण हो
कल्याण करने की परम शक्ति मुझे प्रदान करें।
समस्त विश्व के सभी जीव सुख-शांति प्राप्त करें।
सबके भीतर मंगल भाव प्राप्त हों।

हे विश्ववंद्य प्रकट शुद्धात्मा स्वरूप प्रभो!
मैं कभी भी आप गुरुदेव से
ज्ञानवाद से, स्याद्वाद से,
परम ज्ञान से, परम ध्यान से,
शुद्धात्मा से, शुद्धात्मा की उपासना करने वाले
सभी कल्याणमूर्ति समकितधारी महात्माओं के शुद्धात्मा से,
सभी सिद्धों से, संतों से, महंतों से,
जगत के जीवमात्र से
कभी भी शंकित, वंचित या वक्रदर्शी न बनूं
ऐसी शक्ति, भक्ति, दृष्टि,

ज्ञान, विवेक, विनय, चारित्र्य और प्रज्ञा मुझे प्रदान करें।

एकनिष्ठा से एकमात्र आपकी ही आज्ञा में रहकर जीवन-व्यापार करने की मेरी जो दृढ़ अभिलाषा एवं प्रतिज्ञा है,

उसे परिपूर्ण करने की मुझे शक्ति प्राप्त हो। (3)

आज और इस क्षण तक

आपकी जिस किसी भी आज्ञा का पालन मुझसे न हुआ हो,

उसके लिए मैं क्षमा-याचना करता हूं,

आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान करता हूं।

मुझे क्षमा करें, क्षमा करें, क्षमा करें।

हे विश्ववंद्य प्रकट शुद्धात्मा स्वरूप प्रभो!

आपसे उद्‌बोधित सत्संग मुझमें निरंतर प्रकाशमान हो। (3)

आपसे प्रबोधित सम्यक्‌ज्ञान

मुझे क्षण-प्रतिक्षण जागृति प्रदान करता रहे। (3)

स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं,

यह ज्ञान मेरे अन्तर् में संस्थापित रहे। (3)

विघ्न-बाधा (दखल-अंदाजी) उत्पन्न न करूं

ऐसी शक्ति मुझे प्रदान करें। (3)

सिर्फ देख-भाल करने की मुझे शक्ति प्रदान करें। (3)

केवल आपकी ही कृपा का मैं अभिलाषी हूं। (3)

आपके चरणारविंद मेरे हृदय में स्थापित हों। (3)

मैं शुद्धात्मा हूं, मैं शुद्धात्मा हूं..... (25)

मैं निश्चय-निर्णय से केवल शुद्धात्मा ही हूं।

ये संसार एक धर्मशाला है। (3)

मुझे मेरे घर लौटना है। (3)

मेरा घर सिद्धालय है। (3)

मैं अपने घर निश्चित लौटूंगा। (3)

ooo

आलोचना-प्रतिक्रमण

विहरमान अरिहंत परमात्मा श्री सीमंधर स्वामी भगवान के चरणों में नमन-वंदन।

वर्तमान आचार्य सम्राट आत्मज्ञानी सद्गुरुदेव श्री शिवमुनि जी म.सा. के चरणों में नमन-वंदन।

समस्त सम्यक्त्वी आत्माओं के चरणों में नमन-वंदन।

(1)

1. भाव आलोचना के लिए आँखें बंद कर लें।
2. अनादिकाल की इस यात्रा को समाप्त करने के लिए
3. कार्मण देह पर पड़े अनादिकाल के उन कर्मों से स्वयं को मुक्त करने के लिए।
4. यह यात्रा जो संसार की ओर गतिमान है।
5. इसे सिद्धत्व की ओर ले जाने के लिए।
6. हे जीवात्मन्! आज होश में आकर देखो।
7. कैसा जीवन जी रहे हैं।

(2)

1. जैसा जीवन वर्तमान में हम जी रहे हैं।
2. जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि समस्त कषाय हैं।
3. क्या ऐसे जीवन जीने का परिणाम हमें सिद्धत्व की ओर बढ़ती इस यात्रा में मिलेगा?

(3)

1. या ऐसा जीवन हमें पुनः-पुनः चार गति चौरासी लाख जीवायोनि में देह देगा।
2. उपस्थित प्रत्येक जीव से आज अनुरोध है अपने स्वयं के जीवन को देखें।
3. क्या कमाया पूरे जीवन भर?
4. स्वयं को क्या माना हुआ है?

5. पूरा जीवन स्वयं को देह मानकर जीए!
6. या जीवात्मन् मानकर जीएं!

(4)

1. पूरा जीवन व्यक्तित्व का पोषण किया या अस्तित्व का पोषण किया?
2. जीवन भर मोहनीय कर्म को कम करने का पुरुषार्थ किया?
3. या मोहनीय कर्म बढ़ता गया?
4. पूरा जीवन कर्त्ता-भाव का पोषण किया।

(5)

1. या ज्ञाता-द्रष्टा भाव जिसमें केवली जीते हैं।
2. ऐसे भाव को बढ़ाने का प्रयास किया।
3. हे आत्मन्! स्वयं द्वारा स्वयं का अवलोकन करके देखें।
4. जैन कुल में देह धारण करने के पश्चात्, वीतरागी को प्रतिदिन वंदन करने के पश्चात्
5. कितना राग-द्वेष बढ़ाया?

(6)

1. कार्मण देह पर कितने कर्म बढ़ाए?
2. आँखें बंद कर स्वयं का अवलोकन करें!
3. जो अर्हन्त सिद्ध पूज्य हैं,
4. उन्हें वंदन किस भाव से किया?
5. अभी भीतर में कितनी इच्छाएं हैं, आकांक्षाएं हैं?
6. संसार में और क्या हासिल करना है?

(7)

1. उपस्थित प्रत्येक साधक देखे!
2. सोचे, विचारे कि आपका परम लक्ष्य क्या है?
3. संसार से मुक्त होने का लक्ष्य है?
4. या संसार के लक्ष्य हैं?
5. हमने समझा है। आप और हम सब जीव हैं, जीवात्मा हैं।
6. अष्ट गुणों से युक्त एक समान जीव हैं।

(8)

1. आपमें, हममें, सबमें सिद्ध होने का सामर्थ्य है।
2. हे आत्मन्! स्वयं देखो।
3. किसी देह को देखकर कैसे विचार आए? कैसे भाव आए?
4. कैसे प्रतिक्रिया की? कोई अपना लगा तो कोई पराया लगा!
5. किसी पर राग आया, किसी पर द्वेष आया।

(9)

1. और आगे देखो कार्मण देह में से जब कर्म निकलकर आपके इस औदारिक देह पर आएं।
2. कभी सर में दर्द बनकर आए।
3. कभी पेट में, पांव में दर्द बनकर आए।
4. कभी अपमान बनकर आए।
5. कभी किसी ने हमारी निंदा की।
6. अनेक प्रकार से कर्म अपने-अपने समय पर निकलते गए।
7. कभी सकारात्मक निकले, कभी नकारात्मक निकले।

(10)

1. निकलते कर्मों को कैसे स्वीकारा?
2. जब कर्म निकलकर तुम्हारी इस काया पर आए।
3. तो क्या कर्म को दबाया? क्या देवी-देवताओं का आह्वान किया?
4. क्या प्रार्थना की? क्या शिकायत की?
5. क्या निमित्त पर राग या द्वेष किया?

(11)

1. प्रत्येक उपस्थित साधक देखे!
2. अनादिकाल के मोह एवं मिथ्यात्व के कारण?
3. इस संसार में पड़े हो।
4. अपने संसार को सीमित करने का, संसार को, कर्म के संसार को समाप्त करने का कितना पुरुषार्थ किया है?

(12)

1. हे जीवात्मन्! वास्तव में यह निरीक्षण करने जैसा है।
2. इस देह में स्वयं को जैन कहलाकर
3. उच्च कुल में जन्मे हैं।
4. ऐसा अहं का भाव भीतर चलता रहा।
5. पर ऐसे उच्च कुल में देह धारण करने के पश्चात्
6. कितना कर्मों को क्षय किया?

(13)

1. और नए कर्मों के बंधन रुक जाएं।
2. ऐसा कितना पुरुषार्थ किया?
3. हम इस देह में हैं, कर्म के कारण।
4. हम इस संसार में हैं, कर्म के कारण।
5. हम तब तक संसार में रहेंगे जब तक सत्ता में कर्म रहेंगे।

(14)

1. रात्रि में, निद्रा में, प्रमाद में, बेहोशी में हम कर्म बांधते हैं।
2. क्योंकि वहां यह होश नहीं रहता कि-
3. हम जीवात्मा हैं।

(15)

1. प्रातः काल जगते ही धर्म की क्रियाएं स्वयं को देह मानकर की तो
2. वहां भी स्वयं को देह मानने से कर्म के बंधन बंध गए।
3. फिर जहां देह की क्रियाएं प्रारम्भ की,
4. वहां कर्म के बंधन बंध गए।
5. छः काय जीवों की विराधना जहां हो गई,
6. वहां कर्म के बंधन बंध गए।

(16)

1. फिर धन कमाने में, परिवार चलाने में, सम्बन्ध निभाने में,
2. कहीं क्रोध, कहीं मान, कहीं माया, कहीं लोभ आदि कषाय के कारण कर्म के बंधन बंधते चले गए।

3. कभी श्रोत्र-इन्द्रिय के विषयों को महत्व दिया।
4. कभी चक्षु-इन्द्रिय के विषयों को महत्व दिया।
5. इस प्रकार पांचों इन्द्रियों के विषयों को महत्व देते गए।

(17)

1. मन के पीछे चलते गए।
2. बुद्धि से निर्णय लेते गए।
3. अपने-पराए के भेद बनाते गए।
4. संकल्प-विकल्प करते गए।
5. कभी भूत काल का चिंतन कर आर्त्त-रौद्र ध्यान किया।
6. कभी भविष्य काल की कल्पनाओं से जुड़कर आर्त्त-रौद्र ध्यान ध्याया।
7. जरा कल्पना कर ऐसा आर्त्त-रौद्र ध्यान ध्याने से।
8. इस देह में रहते हुए विभाव अवस्था के कारण।
9. स्वयं को देह मानने से जिसे मिथ्यात्व कहते हैं।
10. ऐसे मिथ्यात्व के कारण देह के मोह में पड़े।

(18)

1. कितने कर्म बांधे हैं?
2. ये बंधे कर्म कैसे क्षय करोगे?
3. धर्मध्यान की कुछ क्रियाओं से अनादिकाल के बंधे अनन्त कर्म क्षय नहीं होने वाले।
4. हे आत्मन्! आज प्रथम आलोचना कीजिए!
5. अपने विभाव की आलोचना कीजिए!
6. मैंने स्वयं को देह माना, स्वयं को देह मानकर जीया।

(19)

1. मैंने कर्त्ता-भोक्ता भाव का पोषण किया।
2. मैं किसी देह के भीतर जीव तत्व का दर्शन नहीं कर पाया।
3. मैंने मिथ्या दृष्टि को महत्व दिया।
4. मैंने पुद्गलों का चिंतन किया।
5. मैंने पुद्गलों में सुख खोजा किस कारण?

6. हे जीवात्मन्! तुम अपने आप से क्षमा मांगो!
7. अपने आप से क्षमा यानि निज जीवात्मा से क्षमा।

(20)

1. जो हमारे ही कारण, हमारे अज्ञान, हमारे मिथ्यात्व, हमारे मोह के कारण।
2. इस देह में है, इस संसार में है।
3. जिसमें कैवल्य है।
4. जिसमें सिद्ध होने का सामर्थ्य है, हमारे ही कारण।
5. संसार में पड़ा है।
6. संसार का चिंतन कर हमने स्वयं से शत्रुता कर ली।

(21)

1. पुद्गलों का चिंतन कर स्वयं से शत्रुता कर ली।
2. जहां अनन्त सुख था, सुख को गौण कर पुद्गलों में सुख खोज कर हमने स्वयं के साथ अन्याय कर लिया।
3. कर्मों को दबाकर प्रार्थनाओं के द्वारा हमने अपने कार्मण देह से कर्मों को क्षय नहीं होने दिया।
4. आप, हम सब जीवात्मा हैं।
5. आप, हम जैसे अनन्त जीव सिद्ध हो गए।
6. चार गति से मुक्त हो गए।

(22)

1. सिद्धशिला में अशरीरी स्थिति को प्राप्त कर गए।
2. आप, हम सब सिद्ध होंगे।
3. कब? जब स्वयं को जीव जानेंगे, जब स्वयं को जीव जानकर प्रात:काल से अर्धरात्रि तक, अर्धरात्रि से प्रात:काल तक देह व धर्म की क्रियाओं में,
4. कर्त्ता-भाव से नहीं अक्रिय स्थिति में जाकर जीयेंगे।

(23)

1. हे आत्मन्! सिद्ध होने के अलावा यदि कोई लक्ष्य बनाया हो।
2. आज दिन के इस क्षण तक इस देह में रहकर पूर्व के उन अनन्त देह में रहकर, सिद्ध होने के अलावा यदि कोई लक्ष्य बनाया हो।

3. आज उसे बोसिरा दें, उसका प्रतिक्रमण कर ले।
4. हे आत्मन्! स्वयं को देह मानकर जितना मोहनीय कर्म का पोषण किया है।
5. आज उसके लिए क्षमा मांगें।
6. क्षमा मांगें! कर्त्ता-भोक्ता भाव के लिए क्षमा मांगें!

(24)

1. आप जीवात्मा हैं। आपको मुक्त होना है।
2. आपने जब-जब पुद्गलों में सुख खोजा अपनी उस मिथ्या दृष्टि के लिए क्षमा मांग लो।
3. सुख पुद्गल में नहीं है।
4. आपने जब जन्म को जन्म जाना, मृत्यु को मृत्यु जाना।
5. इस विभाव, इस अज्ञान एवं इस मिथ्यात्व के लिए क्षमा मांग लें।

(25)

1. जीव, जीवात्मा का कोई जन्म नहीं है।
2. जीवात्मा की कभी मृत्यु संभव नहीं है।
3. आपका और हमारा, आप जैसे समस्त जीवों का जन्म नहीं हुआ है।
4. गर्भ से देह धारण कर जीव बाहर निकला, बाहर निकलकर उसने जितना भी मिथ्यात्व का पोषण किया।
5. जितने भी कर्म के बंधन बांधे।

(26)

1. उसकी अनुमोदना करना यानि किसी का जन्मदिन मनाना है।
2. ऐसे ही आप हम सब अनन्तकाल से यात्रा कर रहे हैं।
3. पर आपका हमारा कभी न जन्म हुआ, न कभी मृत्यु संभव है।
4. मृत्यु का भय मिटा दो।

(27)

1. हे आत्मन्! सम्यक्त्वी बनकर,
2. सिद्धशिला का पंचमगति सिद्धालय का अपना लक्ष्य बनाओ।
3. अनन्तकाल में अनन्त देह छूट गए।
4. हे आत्मन्! इस देह को भी छूटने वाला जानें।

(28)

1. वर्तमान में आप जिस काया में हैं उस काया को इसी समय छूटने वाला जानिए।
2. यह काया छूटेगी जहां आयुष्य कर्म पूर्ण हुआ।
3. इस जड़ से जीव निकल जायेगा इस आकार से।
4. निराकार तत्व निकल जायेगा।
5. जीव निकल जायेगा, यात्रा जीव की चल रही है।
6. हे जीवात्मन्! आप, हम सब यात्री हैं।

(29)

1. अपने जीव की ओर देखें।
2. क्या किया इस जीव के लिए?
3. देह को जब भूख लगी, भोजन दिया, जब प्यास लगी, पानी दिया।
4. जब सुख-सुविधा के साधनों की आवश्यकता लगी,
5. वो साधन उपलब्ध करवाए।

(30)

1. देह को जब जो चाहिए वो दिया।
2. जीव को क्या दिया?
3. हे आत्मन्! यहां समझना जड़ में जीव दो तत्व साथ हैं, पर जुदा हैं।
4. एक समय आयेगा।
5. आपके हमारे जड़ से जीव निकल जायेगा, यह यात्री अपनी यात्रा में आगे निकल जायेगा।

(31)

1. मात्र जीव तत्व को महत्व दें।
2. जीव तत्व को महत्व देने से अनन्त जीव सिद्ध हो गए।
3. पुद्गलों को महत्व देने वाले संसार में देह धारण किए हुए हैं।
4. चार गति चौरासी लाख जीवायोनि में पड़े हैं।
5. पन्द्रह कर्म भूमि में पड़े हैं।

(32)

1. हे आत्मन्! अब तक विभाव के कारण, मिथ्यात्व के कारण बहुत समय जड़ को, इन पुद्गलों को दिया।

2. अब होश में आकर निज जीव तत्व को समय दो।
3. कर्म कोई भी, कैसा भी, कभी भी निकलकर आए।
4. कोई प्रश्न ही नहीं यह कर्म क्यों निकला?
5. यह कर्म तुम्हारे ही कारण बंधा था।
6. तुम्हारे विभाव के कारण बंधा था।
7. तुम्हारे मोह और मिथ्यात्व के कारण बंधा था।
8. यह कर्म निकल रहा है, निकलते कर्मों के द्रष्टा हो जाओ।

(33)

1. तुम्हारे द्रष्टा होने से यह कर्म ठहर नहीं पायेगा।
2. यह कर्म क्षय होगा इस प्रकार सत्ता में पड़ा एक नहीं, अनेक नहीं, अनन्त कर्म इस स्वभाव में रहकर,
3. सम्यक् दृष्टि के द्वारा निकलते कर्मों को द्रष्टा भाव से देखकर देह को एक प्रयोगशाला बनाकर क्षय किया जा सकता है।
4. क्योंकि जीवात्मन्! तुझे सिद्ध होना है।

(34)

1. वर्तमान में इस देह की पहचान को स्वयं की पहचान नहीं जानना।
2. जो दिख रहा है वो मैं नहीं हूँ।
3. इस नाम से आगे, इस जाति-कुल-सम्प्रदाय से आगे, इस आकार से आगे, तुम्हारा अस्तित्व है।
4. यह देह है, तब भी तुम हो।
5. यह देह छूट जायेगा, तब भी तुम रहोगे।
6. तुम शाश्वत तत्व हो।

(35)

1. हे आत्मन्! निज आत्मा को महत्व दो।
2. निज जीव को महत्व दोगे तो सत्ता में पड़े कार्मण देह पर पड़े अनादिकाल के वो अनन्त कर्म निश्चित निश्चित क्षय होंगे।
3. जब तक देह को महत्व दोगे।
4. कर्म क्षय की धारा पकड़ नहीं पायेंगे।
5. जिसने जीव को महत्व दिया वो

6. सिद्धत्व की ओर आगे बढ़ गया।
7. जीव को महत्व देगा वो सिद्धत्व की ओर आगे बढ़ जायेगा।

(36)

1. हे जीवात्मन्! प्रतिक्रमण कर लो प्रत्येक श्वास का, जहां स्वयं को देह जाना।
2. देह जानकर मानकर जो कोई क्रिया की देह की, धर्म की।
3. आज उसका प्रतिक्रमण कर लो, प्रतिक्रमण कर लो।
4. जब किसी देह को देह जाना, देह जानकर जब किसी की निंदा की, किसी का उपहास बनाया।
5. जब तुम कभी कर्त्ता-भोक्ता बने।
6. किसी भी अवस्था के उसका प्रतिक्रमण कर लो।
7. जब कभी पुद्गलों में सुख खोजने का यत्न किया।

(37)

1. आज उसके लिए क्षमा मांग लो।
2. सुख जीवात्मा में है।
3. जितना समय पुद्गल के इस पिण्ड को दिया।
4. आज उसके लिए क्षमा मांग लो।

(38)

1. समय जीव आत्मा को देना है।
2. इस प्रकार आलोचना-प्रतिक्रमण-
3. प्रायश्चित्त कर और सम्यक् दृष्टि बन
4. आप हम सब चार गति की यात्रा पूर्ण करें, यही पुरुषार्थ, यही विवेक, यही संकल्प!
5. समस्त क्षायिक सम्यक्त्वी आत्माओं को नमन! सिद्धत्व के मार्ग पर देह को एक प्रयोगशाला बनाकर जो आगे बढ़ रहे हैं, उन्हें नमन!
6. इन्हीं नमन-वंदन और भेद-विज्ञान से जुड़े भावों में जिसमें जड़ और चेतन दो भिन्न तत्व, भिन्न लगे।
7. इन्हीं प्रतिक्रमण, आलोचना और प्रायश्चित्त भरे भावों, जहां मोह कर्म की आलोचना की यहां कर्त्ता-भोक्ता भाव की आलोचना की।

8. यहां आर्त-रौद्र ध्यान की आलोचना की।
9. जहां पुद्गलों में सुख खोजे इस कारण आलोचना की।
10. जहां जिस देह को देह जानकर प्रतिक्रिया की। इसकी आलोचना की।
11. इन्हीं भावों में रहते हुए एक सामान्य श्वास भीतर लो।

धीरे-धीरे छोड़ दें।

दोनों हाथ आँखों पर कोमल-सा स्पर्श,

जब भी चाहें अपनी आँखें खोल सकते हैं।

अनन्त-अनन्त नमन-वंदन।

ooo

संलेखना-पाठ

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा, पौषध-शाला पूंजी, पूंजी ने, उच्चारपासवण-भूमिका पडिलेही पडिलेहीने, गमणागमणे पडिक्कमी, पडिक्कमीने, दर्भादिक संथारो संथरी, संथरीने, दर्भादिक संथारो दुरुही दुरुहीने, पूर्व तथा उत्तर दिशि पल्यंकादिक आसने बेसी बेसीने, करयल संपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजली त्ति कट्टु एवं वयासी – "नमोऽथुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं" एम अनंता सिद्ध जी नू नमस्कार करीने जयवंता वर्तमान तीर्थंकरने नमस्कार करीने, पछी पोताना धर्माचार्य ने नमस्कार करीने, साधु प्रमुख चारे तीर्थ खमावीने, सब जीव-राशि खमावीने, पूर्वे जे व्रत आदरयां छे, तेना जे अतिचार दोष लाग्या होय ते सर्वनूं संभरी संभरी ने, आलोई पडिक्कमी निंदी गरही निशल्य थईने, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोहं, माणं, मायं, लोभं जाव मिच्छा-दंसण-सल्लं सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि मणसा, वयसा, कायसा। एम अठारे पापस्थानक पच्चक्खीने, सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए, एम चारे आहार पच्चक्खीने, जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुन्नं मणामं धिज्जं विसासियं संमयं अणुमयं बहुमयं भंडकरंडसमाणं रयणकरंडगभूयं, मा णं सियं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसगा, मा

णं मसगा, मा णं वाहियं, पित्तियं, कप्फियं, संभियं, सन्निवाइयं, विविहा रोगायंका परिसहाउवसग्गा फासा फुसंति। एवं पि य णं चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु, एम शरीर वोसिरावीने कालं अणवकंक्खमाणे विहरामि, एहवी सद्दहणा परूवणा, करिए तिवारे, फरसनाए करी शुद्ध एहवा अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा झूसणा आराहणाना पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं - इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

शब्दार्थ –

अपच्छिम मारणंतिय – मृत्यु के समीप आ जाने पर,

संलेहणा – संलेखना करनी चाहिए जोकि,

झूसणा – आत्मा को कर्मों से मुक्त करने वाली है,

आराहणा – आराधना करके फिर

पौषधशाला – पौषधशाला का

पूंजी पूंजीने –प्रमार्जन कर, प्रमार्जन करके

उच्चारपासवण-भूमिका – विष्ठा एवं मूत्रार्थ भूमि की,

पडिलेही पडिलेहीने – प्रतिलेखना कर, प्रतिलेखना करके,

गमणागमणे – फिर आने-जाने से जो विराधना होती है उससे,

पडिक्कमी, पडिक्कमीने – पीछे हटे, पीछे हटकर,

दर्भादिक संथारो संथरी, संथरीने – दर्भादि का आसन बिछाए, बिछा कर,

दर्भादिक संथारो दुरूही दुरूहीने – फिर दर्भादिक संथारे के ऊपर आरूढ़ होवे, फिर,

पूर्व तथा उत्तर दिसि – पूर्व तथा उत्तर दिशा में,

पल्यंकादिक – पर्यंक आदि,

आसने बेसी, बेसीने – आसन पर बैठे, बैठकर फिर,

करयल – दोनों हाथ,

संपरिग्गहियं – जोड़कर,

सिरसावत्तं – सिर से आवर्त्तन करता हुआ,

मत्थए अंजली त्ति कट्टु – मस्तक पर दोनों हाथ जोड़कर, उसके अनन्तर,

एवं वयासी – ऐसे कहे,

नमोऽथुणं – नमस्कार हो,

अरिहंताणं – श्री अरिहंत,

भगवंताणं – भगवन्तों को,

जाव संपत्ताणं – यावत् जो मुक्ति को प्राप्त हुए हैं,

एम अनंता सिद्ध जी ने – इसी प्रकार अनन्त सिद्धों को,

नमस्कार करीने – नमस्कार करके,

पछी पोताना – फिर अपने

धर्माचार्य ने – धर्माचार्य जी को

नमस्कार करीने – नमस्कार करके

साधु प्रमुख चारे तीर्थ खमावीने – साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चारों ही तीर्थों से क्षमापना करके,

सव्व जीवराशि खमावीने – समस्त जीवों को क्षमा प्रदान करके,

पूर्वे जे व्रत आदरयां छे – पहले जो व्रत ग्रहण किए हुए हैं,

तेना जे अतिचार दोष लाग्या होय – उन में जो अतिचार रूप दोष लगे हैं,

ते सर्वने संभरी संभरीने – उन सब को स्मरण करके गुरु आदि के समीप उनकी,

आलोई – आलोचना करके,

पडिक्कमी – प्रतिक्रमण करके,

निंदी – आत्म-साक्षी से निन्दा करके,

गरही – गुरु की साक्षी से गर्हणा करके,

निशल्य थईने – फिर शल्यों से रहित होकर कहे –

सव्वं पाणाइवायं – सब प्रकार से प्राणातिपात का,

पच्चक्खामि – मैं प्रत्याख्यान करता हूँ

सव्वं मुसावायं – सब प्रकार के मृषावाद का,

पच्चक्खामि – प्रत्याख्यान करता हूँ,

सव्वं अदिन्नादाणं पच्चक्खामि – सब प्रकार के अदत्तादान अर्थात् चोरी का प्रत्याख्यान करता हूँ,

सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि – सब प्रकार के मैथुन का प्रत्याख्यान करता हूँ,

सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि – और सब प्रकार के परिग्रह का भी प्रत्याख्यान करता हूँ,

सव्वं कोहं – सब प्रकार के क्रोध,

माणं – मान,

मायं –छल,

लोभं – लोभ को,

जाव मिच्छा-दंसण-सल्लं पच्चक्खामि – यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य पर्यन्त अठारह पापों को छोड़ता हूँ

सव्वं अकरणिज्जं – सब प्रकार से अकरणीय कार्यों का,

पच्चक्खामि – मैं प्रत्याख्यान करता हूं,

जावज्जीवाए – जीवन भर के लिए,

तिविहं – तीन करण और

तिविहेणं – तीन योगों से, जैसे कि,

न करेमि – न करूं

न कारवेमि – न ही औरों से कराऊं

करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि – जो अकृत्य कार्य करते हैं, उन की अनुमोदना भी नहीं करूं,

मणसा – मन से,

वयसा – वचन से,

कायसा – काया से,

एम अठारे पापस्थानक पच्चक्खीने – इस प्रकार से अष्टादश पापस्थानकों का प्रत्याख्यान करके,

सव्वं – सर्व प्रकार से,

असणं – अन्न,

पाणं – जल,

खाइमं – मेवादि,

साइमं – मुखवास-सुपारी आदि,

चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि – इन चारों ही आहारों का प्रत्याख्यान करता हूं,

जावज्जीवाए – जीवन पर्यन्त,

जं पि य इमं सरीरं – जो प्रिय है यह प्रत्यक्ष मेरा शरीर,

इट्ठं – इष्टकारी है,

कंतं – कांतियुक्त है,

पियं – प्रीतियुक्त है,

मणुन्नं – मनोज्ञ है,

मणामं – अत्यन्त आकर्षक है,

धिज्जं – धैर्य रूप है,

विसासियं – विश्वास-जन्य है,

संमयं – सम्मत है,

अणुमयं – विशेष अभीष्ट है,

बहुमयं – बहुत ही मानने योग्य है,

भंडकरंड समाणं – आभूषणों के डिब्बे के समान है,

रयणकरंडगभूयं – रत्नकरण्डक के समान है,

मा णं सियं – न मुझ को शीत लगे,

मा णं उण्हं – न गर्मी लगे,

मा णं खुहा – न क्षुधा लगे,

मा णं पिवासा – न प्यास लगे,

मा णं बाला – न ही मुझ को सर्प स्पर्श करे,

मा णं चोरा – न मुझको चोरों का भय होवे,

मा णं दंसगा – न मुझे डंस आदि पीड़ित करें,

मा णं मसगा – न मुझको मच्छर आदि दुःख देवें,

मा णं वाहियं – न मुझको व्याधि और,

पित्तियं – पित्त होवे,

कप्फियं संभियं – महान् भयंकर कफ एवं श्लेष्म न उत्पन्न हो,

सन्निवाइयं – न मुझको सन्निपात रोग उत्पन्न हो,

विविहा रोगायंका – न मुझको विविध प्रकार के रोग-आतंक,

परिसहा-उवसग्गा – न मुझको परीषह एवं उपसर्ग,

फासा फुसंति – जो स्पर्श उत्पन्न होते हैं उन से रक्षा करता हुआ,

एवं पि य णं – मैं ऐसे अपने प्रिय शरीर को,

चरिमेहिं – अन्त के,

उस्सासनिस्सासेहिं – श्वासोच्छ्वास पर्यन्त,

वोसिरामि – छोड़ता हूं,

त्ति कट्टु – ऐसे कह कर,

एम शरीर वोसिरावीने – और इसी प्रकार शरीर के ममत्व-भाव को त्याग कर,

कालं अणवकंक्खमाणे – जीवन-मरण की आकांक्षा न करता हुआ,

विहरामि – विचरता हूं अथवा विचरूंगा,

एहवी सद्दहणा परूवणा – इस प्रकार मेरी श्रद्धा वा प्ररूपणा सदैव काल है किन्तु,

करिए तिवारे फरसनाए करी शुद्ध – जिस समय संलेखना की जाए तब वह स्पर्शना करके ही शुद्ध होती है अर्थात् विधि सहित पालन करने पर ही यह व्रत पूर्ण होता है।

एहवा – ऐसे,

अपच्छिम – अन्तिम,

मारणंतिय – मृत्यु के समीप,

संलेहणा – संलेखना से,

झूसणा – कर्मों को क्षय करने के मार्ग के,

पंच – पांच,

अइयारा – अतिचार,

जाणियव्वा – जानने योग्य हैं,

न समायरियव्वा – किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं,

तं जहा – तद्यथा,

ते आलोउं – उनकी आलोचना करता हूँ,

इहलोगा-संसप्पओगे – इस लोक में चक्रवर्ती आदि पदवियों की आशा करना,

परलोगासंसप्पओगे – परलोक में देव या इन्द्रादि की पदवी की आशा करना अथवा,

जीवियासंसप्पओगे – जीवितव्य की आशा रखना कि संलेखना से मेरी महान यश:कीर्ति होगी, इसलिए कुछ दिन और भी जीता रहूं तो अच्छा हो,

मरणासंसप्पओगे – रोग आदि की प्रबलता के कारण मृत्यु की इच्छा करना,

कामभोगासंसप्पओगे – काम-भोगों की आशा करना कि मृत्यु के पीछे मुझे विशिष्ट काम-भोग प्राप्त होवें,

जो मे देवसि अइयारो कओ – जो भी मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किए हैं,

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं – उन अतिचार रूप दोषों से मैं पीछे हटता हूं, क्योंकि वे सभी दुष्कृत मेरे लिए अकरणीय हैं।

भावार्थ –

उक्त पाठ का यह आशय है कि जब मृत्यु समीप आ जाए तब पौषधशाला में दर्भादि का आसन बिछा कर पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर मुख करके **"णमोत्थुणं"** के पाठ से सिद्धों और वर्तमान काल के अरिहन्तों को नमस्कार करके, फिर प्राणी मात्र से क्षमापना करके, तथा जो व्रत ग्रहण किए हुए हैं उनकी आलोचना-निंदना करते हुए तीन करण और तीन योगों से अठारह पापों का एवं चतुर्विध आहार का भी परित्याग कर दे। फिर जो प्रिय मनोहर यह शरीर है, इसकी ममता को छोड़ दे और पांचों ही अतिचारों का त्याग करके शुद्ध अनशन करे। श्रद्धान की शुद्धि के लिए इस संलेखना का नित्य ही पाठ करना चाहिए।

ooo

मंगल मैत्री

धर्म धर्म तो सब कहें, धर्म न जाने कोय।
निर्मल मन का आचरण, सत्य धर्म है सोय॥

धर्म न हिन्दू बौद्ध है, सिक्ख न मुस्लिम जैन।
धर्म चित्त की शुद्धता, धर्म शांति सुख चैन॥

सम्प्रदाय ना धर्म है, धर्म न बने दीवार।
धर्म सिखाए एकता, धर्म सिखाए प्यार॥

नमस्कार अरिहंत को, नमस्कार सब संत।
नमस्कार शुद्ध धर्म को, है उपकार अनन्त॥

नमस्कार अरिहंत को, नमस्कार सब संत।
नमस्कार गुरुदेव को, है उपकार अनन्त॥

नमस्कार गुरुदेव को, कैसे संत सुजान।
कितने करुणा चित्त से, दिया धर्म का दान॥

जन-मानस में प्यार ही, उर्मिल उर्मिल होय।
रोम-रोम में ध्वनि उठे, मंगल मंगल होय॥

सबका मंगल, सबका मंगल, सबका मंगल होय रे।
तेरा मंगल, तेरा मंगल, तेरा मंगल होय रे॥

दृश्य और अदृश्य सभी, जीवों का मंगल होय रे।
जल के थल के और गगन के, प्राणी सुखिया होय रे॥

दश दिशाओं के सब प्राणी मंगल लाभी होय रे।
निर्भय हो निर्वैर बनें सब, सभी निरामय होय रे।
जन-जन मंगल, जन-जन मंगल, जन-जन मंगल होय रे॥

मौलिक प्रश्न

1. **तुम्हें समता चाहिए या ममता?**

   ममता चाहिए तो संसार मिलेगा। समता चाहिए तो मुक्ति मिलेगी।

2. **सुख चाहिए या दु:ख?**

   सुख चाहिए तो संसार मिलेगा। सुख की आकांक्षा रहेगी तो संसार-भ्रमण बढ़ेगा। दु:ख को स्वीकार कर लोगे तो मुक्ति के नजदीक पहुंच जाओगे।

3. **संसार को बदलना है या स्वयं को बदलना है?**

   संसार अनंतकाल से चल रहा है, इसे आज तक कोई बदल नहीं सका। संसार को बदलने में पुरुषार्थ करके नवीन कर्मों का उपार्जन करके स्वयं का संसार बढ़ता है। स्वयं को बदलने का संकल्प करके वीतराग साधना द्वारा मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। जिसने स्वयं को नहीं बदला वे लोग आज संसार को बदलने चले हैं और अशान्त और दु:खी हो रहे हैं।

4. **किसे बदलना है? दृश्य को या दृष्टि को?**

   संसार अनंतकाल से चल रहा है, इसमें न कुछ अच्छा है और न कुछ बुरा है। जैसे भगवान् महावीर चंदनबाला की दृष्टि में भगवान् हैं तो दूसरी ओर एक गोपाल की दृष्टि में साधारण भिक्षु हैं। इसी प्रकार संसार में हर व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोण से किसी को अच्छा और किसी को बुरा बना रहा है, लेकिन सम्यक्-दृष्टि प्राप्त होने पर न कुछ अच्छा है और न कुछ बुरा है।

5. **साधना में प्रगति के लिए क्या करें?**

   साधना में प्रगति के लिए साधना करते-करते सोऽहं को भी छोड़ दो। भेद-विज्ञान की साधना करो। भेद-ज्ञान से हर पल, हर क्षण

निर्जरा होती है, उठते, बैठते, खाते, सोते, चलते सतत आपका ध्यान रहे कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ।

6. अपने घर लौटने के लिए हमें क्या करना है?

निन्दा को स्वीकार कर लो, अपने घर लौट आओ।

7. अपने भीतर क्या उजागर करें?

तुम लाख चाहो तो भी किसी जीव को सुखी या दु:खी नहीं कर सकते हो। अत: किसी को सुखी या दु:खी करने में समय न गंवाओ। अपने आपको साधना में लगा दो। आपके भीतर अनंत समता है, उसे उजागर करो।

8. शरीर का आदर क्यों करें?

शरीर का आदर करो, ममत्व मत करो। आदर इसलिए करो कि शरीर से साधना कर सकते हैं।

9. अपने आपको कैसे बदलें?

भेद-ज्ञान की साधना करो। प्रश्न स्वयं हल हो जाएगा।

10. मोक्ष कहां है?

नकार में क्लेश है। स्वीकार में मोक्ष है।

ooo

समाधान शिवाचार्य श्री जी के

प्रश्न : आत्म-ध्यान क्या है?

उत्तर : आत्म-शुद्धि की साधना है आत्म ध्यान।

भेद-ज्ञान की साधना है आत्म-ध्यान और भेद में अभेद की साधना है आत्म-ध्यान।

शुद्ध वीतराग सामायिक की साधना है आत्म-ध्यान।

जीव और अजीव का ज्ञाता बनने की साधना है आत्म-ध्यान।

मैं कौन हूं, मेरा क्या स्वरूप है, मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है, आदि शाश्वत प्रश्नों का समाधान है आत्म-ध्यान।

वीतराग साधना के अनुभव ज्ञान की प्रयोगशाला है आत्म-ध्यान।

समस्त भारत की आध्यात्मिक संस्कृति को समझने और जानने की साधना है आत्म-ध्यान।

प्रश्न : आत्म-शुद्धि की साधना आत्म-ध्यान कैसे है?

उत्तर : आनंद हमारा स्वभाव है, शांति हमारे भीतर है, ज्ञान हम स्वयं हैं, फिर भी आज का मनुष्य क्यों दु:ख एवं विषाद के चक्रव्यूह में फंसा हुआ है? वह क्यों अशांत है और क्यों अज्ञान में भटक रहा है? इसका मूल कारण है हम स्वयं से दूर चले गए हैं और स्वयं के नजदीक आने के लिए आवश्यक है आत्म-शुद्धि। आत्म-शुद्धि अर्थात् मन, वचन, काया की शुद्धि। आत्मा तो शुद्ध ही है, लेकिन साधन रूप हमारे मन, वचन, काया अशुद्ध हो गए हैं। इसके लिए आवश्यक है शरीर की शुद्धि, विचार की शुद्धि और मन की शुद्धि। इसके परे है आत्मा। योग, आसन एवं आहार के माध्यम से शरीर की शुद्धि, सैद्धान्तिक ज्ञान के माध्यम से विचार की शुद्धि और ध्यान के माध्यम से मन एवं मन से पार जो हमारी चेतना है उसकी शुद्धि होती है।

प्रश्न : भेद-ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर : जैन दर्शन के अनुसार जीव को अजीव कहे तो मिथ्यात्व। अजीव को जीव कहे तो मिथ्यात्व। यह ज्ञान पच्चीस बोल के माध्यम से सिखाया जाता है। प्रश्न उपस्थित होता है कि जीव क्या है और अजीव क्या है? सामान्य-रूप से हम यह समझते हैं कि जितने भी जीवित प्राणी हैं वे सभी जीव हैं और मनुष्य के द्वारा बनाये हुए जितने भी पदार्थ हैं ये सभी अजीव हैं। प्रश्न उठता है कि शरीर जीव है या अजीव। मूलतः शरीर के अन्दर रहने वाली आत्मा जीव है और शरीर अजीव है। लेकिन भ्रांतिवश जीव अन्दर रहने के कारण मनुष्य की मान्यता यह हो गयी है कि यह शरीर भी जीव है। लेकिन सिद्धान्त कहता है कि तीन काल में जीव कभी अजीव नहीं बनेगा और अजीव कभी जीव नहीं बनेगा। जो यह मिथ्या मान्यता हो गयी कि आत्मा जब तक शरीर में है तब तक जीव है, इस कारण यह शरीर जो भी कर्म करता है वह सारा कर्म आत्मा पर लग जाता है और उसका फल भोगने के लिए आत्मा को चौरासी लाख जीव-योनियों में भ्रमण करना होता है। अनंतकाल से इसी मिथ्या मान्यता के कारण जीव मिथ्यात्व, अज्ञान और अविद्या में भटक रहा है। इस शिविर में जीव का वास्तविक स्वरूप क्या है, अजीव का वास्तविक स्वरूप क्या है, इन दोनों का भेद-ज्ञान प्रदान किया जाता है। इसी का नाम भेद-ज्ञान है।

संसार के सभी प्राणियों में विभिन्न शरीरों और कर्म के कारण भेद है, लेकिन निश्चय रूप से सभी आत्माएं गुण-दृष्टि से एक समान हैं। **आत्मवत् सर्वभूतेषु** अर्थात् सभी आत्माएं मेरे समान हैं। आत्म-स्वरूप का बोध करवाके निश्चय सम्यक्त्व का बीजारोपण इस शिविर में करवाया जाता है। मैं शुद्ध आत्मा हूं, नाम, पद, प्रतिष्ठा, रिश्ते, नाते ये सभी शरीर के हैं, यह बोध इस शिविर में प्राप्त होता है। जीवन का एक लक्ष्य तय कर दिया जाता है और उसी के आधार पर साधक चौबीस घंटे उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते ये भेद-ज्ञान करता है कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं शुद्धात्मा हूं।

प्रश्न : भेद से अभेद की साधना आत्म-ध्यान कैसे है?

उत्तर : कर्म और शरीर की दृष्टि से सभी आत्माएं अलग-अलग हैं लेकिन गुण दृष्टि से सभी आत्माएं समान हैं। सभी की अन्तिम परिणति

सिद्धालय में ज्योत में ज्योत मिल जाना है। हर आत्मा एक ज्योत रूप में प्रतीक है और अलग-अलग शरीरों में रहने से सबमें भेद है, लेकिन लक्ष्य के दृष्टिकोण से सबका लक्ष्य एक ही है—सर्व कर्मों को क्षय करके मुक्ति को प्राप्त करना, सिद्धालय में जा विराजना। आत्म-ध्यान के अन्तर्गत पहले ज्ञान के द्वारा भेद-ज्ञान, फिर ध्यान के द्वारा आत्म-शुद्धि करते हुए प्रतीक रूप में दीपक के समान अपनी ज्योत को चन्द्रमा के समान पूर्ण ज्योति-स्वरूप सिद्ध परमात्मा से मिलाना भेद से अभेद की साधना है।

पच्चीस बोल के अन्तर्गत षट्द्रव्यों के तीस भेद में जब जीव का दृष्टान्त आता है तो उसमें चन्द्रमा की कला का दृष्टान्त दिया जाता है। अनंतकाल से जीव मिथ्यात्व के कारण अमावस्या की तरह अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था, जैसे ही उसे निश्चय सम्यक्त्व अर्थात् आत्म-बोध हो जाता है तो वह कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष बन जाता है, और शुक्ल पक्ष के पश्चात् आत्म-बोध की प्रथम अवस्था एकम के चन्द्रमा के समान है। जैसे दूज का चन्द्रमा, तीज का चन्द्रमा बढ़कर एक दिन पूर्णमासी का चन्द्रमा बन जाता है उसी प्रकार कर्म क्षय करते हुए जीव आत्म-बोध के पश्चात् सर्व कर्मक्षय करके पूर्ण चन्द्र के समान सिद्ध बन जाता है। यही है भेद से अभेद की साधना।

सोऽहं का अर्थ यही है कि जैसा तू है वैसा ही मैं भी हूं। तुझमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। चार गति के जीवों एवं सिद्धों के जीव में कोई अन्तर नहीं है, यह है भेद से अभेद की साधना।

प्रश्न : शुद्ध वीतराग सामायिक क्या है?

उत्तर : जैन दर्शन में समता की साधना को सामायिक कहते हैं। सामायिक में आर्त्त और रौद्र ध्यान वर्जित है, अर्थात् मैं-मेरे का चिन्तन और किसी दूसरे को कष्ट पहुंचाने की भावना का निषेध है। सामान्य रूप से तीन प्रकार की सामायिक होती है—

1. अशुभ सामायिक, 2. शुभ सामायिक, 3. शुद्ध सामायिक।

अशुभ सामायिक—श्रावक की सामायिक का काल अड़तालीस मिनट का है और साधु की सामायिक का काल जीवन-भर का है। अगर श्रावक या

साधु सामायिक करने के पश्चात् किसी से ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, चुगली, मान, अपमान, माया, लोभ और स्वार्थ की बातें करता है तो उसकी वह सामायिक अशुभ सामायिक होगी जिसका परिणाम पाप-कर्म होगा और पाप-कर्म का फल अशुभ-गति तिर्यंच और नरक है।

शुभ सामायिक–सामायिक ग्रहण करने के पश्चात् प्रार्थना, भजन, जप, स्तुति, स्वाध्याय आदि क्रियाएं की जाती हैं। इसमें अगर शुद्ध भाव आएं तो निर्जरा होती है और शुभ भाव आएं तो पुण्य का अर्जन होता है। इस सामायिक में अधिकांशतः शुभ-भाव रहते हैं। उसका फल है मनुष्य-गति या देव गति।

शुद्ध सामायिक अर्थात् वीतराग सामायिक–इस सामायिक में मैं कौन हूं? मेरा क्या स्वरूप है? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? यह बोध होने के पश्चात् केवल वीतराग-भाव में रहकर 32 दोष रहित जो सामायिक की जाती है वह वीतराग-सामायिक है। इसमें दस मन के, दस वचन के, और बारह काया के दोष टाले जाते हैं। आत्म-ध्यान शिविर में इस प्रकार की वीतराग-सामायिक का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अन्तर्गत बेसिक कोर्स में साधक को आत्म-ज्ञान की आधारशिला प्रदान कर उसका थोड़ा अभ्यास कराया जाता है जिससे उसे आत्मबोध प्राप्त होता है।

आत्म-बोध करवाने के पश्चात् आत्म-ध्यान के माध्यम से वीतराग सामायिक, शुद्ध सामायिक का प्रशिक्षण दिया जाता है। उसके पश्चात् गम्भीर शिविर में एक साथ सुखपूर्वक दो वीतराग सामायिक का अभ्यास करवाया जाता है।

इस प्रकार साधक की अवस्था बढ़ती जाती है और वह एक आसन में तीन-तीन सामायिक करने का अभ्यास सप्त एवं दस दिवसीय शिविर में सीख लेता है। वर्तमानकाल में वीतराग सामायिक लुप्त-सी हो रही थी। हमने वर्षों की साधना के पश्चात् तथा अरिहंत प्रभु श्री सीमंधर स्वामी की कृपा, शासनदेवों के सहयोग, आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज के आशीर्वाद से पुनः इस भरत-क्षेत्र में इस साधना को जन-जन तक ''आत्म ध्यान शिविर'' के माध्यम से प्रसारित करने का सम्यक् संकल्प संजोया है। साधु को भी भगवान् ने दो पहर आत्म ध्यान की प्रेरणा दी है। अतः वर्तमान

में हम साधु-साध्वियों के लिए ऐसी वीतराग सामायिक आवश्यक है और श्रावकों को भी इसका प्रशिक्षण निरन्तर प्रदान कर रहे हैं जो वीतराग धर्म के प्रसार में एक क्रांतिकारी कदम है।

प्रश्न : पहले आप जो ध्यान शिविर करवाते थे उसमें और इस आत्म-ध्यान शिविर में क्या अन्तर है?

उत्तर : पहले के ध्यान शिविरों में हम निरन्तर साधना के प्रयोग कर रहे थे और जैसे-जैसे हमारा अनुभव-ज्ञान बढ़ता गया वैसे-वैसे उसमें विकास करते चले गए। उन शिविरों में भी बहुत सुन्दर परिणाम हमें प्राप्त हुए। इस आत्म-ध्यान शिविर में आत्म-बोध की साधना मिलने के पश्चात् वीतराग सामायिक की आराधना कराते हैं, जो वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामी भगवान् की कृपा से प्राप्त हुई है। उनकी हम पर विशेष कृपा है।

प्रश्न : साधना के लिए क्या आवश्यक है?

उत्तर : साधना के लिए तीन तत्त्व मुख्य हैं-ध्याता, ध्येय और ध्यान। ध्याता अर्थात् मन, वचन, काया। ध्येय आत्म-शुद्धि और मुक्ति। ध्यान-आत्म-ध्यान की विधि, श्वास एवं सोऽहं के द्वारा निर्विकल्प समाधि की ओर बढ़ना अर्थात् धर्म-ध्यान से शुक्ल-ध्यान की ओर बढ़ना। साधना में आगे बढ़ते-बढ़ते ध्याता छूट जाता है, फिर ध्यान और ध्येय रह जाते हैं। अंत में अभेद की साधना में सिर्फ ध्येय ही रह जाता है।

प्रश्न : वीतराग-धर्म की परम्परागत साधनाओं की पूर्ति इस शिविर में कैसे होती है?

उत्तर : जैन परम्परा में मुख्य साधना है अणुव्रत, महाव्रत, सामायिक, रात्रि-भोजन का त्याग, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि की आराधना। इन शिविरों में हम साधकों को अंशकालिक अणुव्रत प्रदान करते हैं, उससे उनको व्रतों का पालन करने की विधि प्राप्त होती है। शुद्ध सामायिक की आराधना सिखाते हैं, उसी के अन्तर्गत स्वयं का अवलोकन कराते हुए अपने पापों की आलोचना करवाते हैं। जीवन में जहां-जहां अतिक्रमण हो गया है उसका भाव-प्रतिक्रमण करवाते हैं। तत्पश्चात् योग्यतानुसार जो साधक प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहता है उसे

प्रायश्चित्त भी प्रदान करते हैं और आत्म-ध्यान के माध्यम से धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान की ओर ले जाते हुए कायोत्सर्ग के विशिष्ट प्रयोग करवाते हैं। इसमें अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस-परित्याग, काय-क्लेश, प्रतिसंलीनता आदि बाह्य तप एवं प्रायश्चित्त, विनय, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग के द्वारा आभ्यन्तर तप की आराधना से कर्म-निर्जरा करवाते हैं। उक्त साधना-विधि से साधक वीतरागता की ओर बढ़ते हुए मोक्ष की ओर बढ़ता है। इसमें अरिहंतों की भक्ति, सिद्धों का ध्यान और 'अप्पा सो परमप्पा' की कला सिखाई जाती है।

प्रश्न : इन शिविरों में प्रवेश के लिए क्या आवश्यक है?

उत्तर : इन शिविरों में प्रवेश कोई भी व्यक्ति कर सकता है, जिसे आनन्द, शांति और सुख प्राप्त करना है तथा जो शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य प्राप्त करना चाहता है, वह इनमें प्रवेश पा सकता है। प्रवेश पाने के लिए आनलाईन पूर्व रजिस्ट्रेशन आवश्यक है। लिंक प्राप्त करने के लिए कार्यालय से सम्पर्क करें।

प्रश्न : आत्म-ध्यान शिविर लगवाने हेतु आयोजक को क्या करना होता है?

उत्तर : आयोजक को मुख्य केन्द्र से सम्पर्क कर प्रशिक्षक की तारीख लेनी होगी तथा अपने क्षेत्र में कम से कम पचास साधकों का रजिस्ट्रेशन करना होगा तथा स्थान और प्रशिक्षक के आवास-निवास की व्यवस्था करनी होगी। अधिक जानकारी हेतु कार्यालय से सम्पर्क कर सकते हैं।

ooo

रोम-रोम पुलकित हुआ

चित्त रूपी झील का निस्तरंग और शांत-प्रशांत हो जाना है ध्यान। समस्त आरोहों-अवरोहों से मुक्त होकर आत्मस्थ हो जाना है ध्यान। विचार, वाणी और व्यवहार के संपूर्ण मौन का नाम है ध्यान।

ध्यान अर्थात् स्व की स्व में अवस्थिति। साधक जब बाहर से आंखें मूंदकर अपने अंतर् में आंख खोलता है तब ध्यान प्रतिफलित होता है। ध्यान की उस वेला में साधक अपनी आत्मा में रमण करता है।

वह आत्म-साक्षात्कार करता है। अपने ही भीतर अक्षय आनन्द के अनन्त स्त्रोतों को पाकर वह मंत्रमुग्ध हो उठता है। उसका तन-मन रोमांचित हो जाता है। मार्ग को उपलब्ध होकर जहां वह कृत्कृत्यता का अनुभव करता है वहीं मार्गदाता के प्रति उसका रोम-रोम परम कृतज्ञता से भर जाता है।

भेद से अभेद की साधना

युगपुरुष श्रमण संघीय चतुर्थ पट्टधर आचार्य सम्राट् पूज्यश्री शिव मुनि जी महाराज के सान्निध्य में चण्डीगढ़, जालंधर, जम्मू चातुर्मासों में साधना करने का अवसर मिला। चातुर्मास में विशिष्ट आराधना और साधना हुई और क्रमशः साधना का विकास हुआ। चण्डीगढ़ में भक्ति और प्रार्थना का स्वरूप उजागर हुआ। उसके द्वारा आत्म-ध्यान शिविरों में साधना का विकास हुआ और साधना में भक्ति का महत्व समझा।

पुनः साधना करते-करते नमस्कार मंत्र, लोगस्स और नमोत्थुणं की साधना से समाधि में प्रवेश करने की विधि प्राप्त हुई।

शासनदेवों के आशीर्वाद से तथा आचार्य भगवंत के आशीर्वाद से भेद-विज्ञान की साधना प्राप्त हुई। इस साधना से चौबीस घण्टे निर्जरा कैसे कर सकते हैं यह वीतराग-विधि प्राप्त हुई। क्रमशः साधना के विकास में भेद से अभेद की साधना प्राप्त हुई। शुद्ध वीतराग सामायिक की आराधना मिली। जम्मू में पहली बार शिविरों के द्वारा एक अलग-सी शरीर और मन की शुद्धि प्राप्त हुई जिसे लोगों ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति-भाव से ग्रहण किया। यह साधना वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी भगवान् के आशीर्वाद से, शासनदेवों के सहयोग से और आचार्य भगवन् के सान्निध्य से जन-जन तक पहुंची। इसमें मुझे भी निमित्त बनने का मौका मिला। इस साधना से मेरी स्वयं की साधना भी विकसित हुई। प्रभु से प्रार्थना है कि ऐसे निमित्त मुझे बार-बार बनने का मौका दें।

ध्यान से पूर्व साधक के लिए आवश्यक निर्देश

पूरी सृष्टि पूरा वातावरण शांत है। हर दिशा हर किनारा शांत है। आपके मन में किसी प्रकार का कोई विचार नहीं है। हृदय में कोई भाव नहीं है। बुद्धि में कोई प्रश्न, कोई संस्कार, कोई धारणा नहीं है। पूरी सृष्टि में सबसे अलग आप साधक के शरीर में विद्यमान एक शुद्धात्मा हैं। इस सम्पूर्ण जगत में आपका किसी के साथ किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। कोई आपका अपना नहीं है और कोई आपसे जुदा नहीं है। आप पूरी दुनिया में अकेले हैं। पन्द्रह कर्मभूमि में पूरी तरह अकेले। सिर्फ एक साधक के शरीर में विद्यमान एक शुद्धात्मा हैं। आप न पुरुष, न स्त्री, न साधु, न साध्वी, न मनुष्य, न देव, न तिर्यंच, कुछ भी नहीं। एक साधक के शरीर में विद्यमान एक शुद्धात्मा हैं आप। एक शुद्धात्मा जिसका जन्म नहीं, जिसका मरण नहीं, जिसका रंग नहीं, जिसका रूप नहीं। बस वही शुद्ध-बुद्ध-निरंजन-निराकार-अजर-अमर-अविनाशी-शाश्वत्-त्रिकाल-सत्य। शस्त्र जिसे काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, मौत मिटा नहीं सकती, जिसे भूख नहीं, जिसे प्यास नहीं, जिसे पीड़ा नहीं, जिसे तड़प नहीं, जिसे बेचैनी नहीं, जिसका रंग नहीं, जिसका रूप नहीं, बस वही शुद्धात्मा आप हैं। न बुद्धिमान

हैं, न धनवान हैं, न निर्धन हैं, संसार का सारा धन विनाशी है। इस प्रकार अपने भीतर गहरे मौन में चले जाएं–

हर श्वास में आत्म परमात्म मिलन की प्यास।
हर श्वास अपने घर सिद्धालय लौटने के लिए॥

हर श्वास कर्म-निर्जरा की हो। श्वास सच में बहुत कम हैं। श्वासों की गिनती की जा सकती है पर अपने ही द्वारा कमाए गए कर्मों की कोई गिनती नहीं। कर्म बहुत ज्यादा हैं। इस भव में किए, पर भव में किए, हंसी में किए, मजाक में किए, उठने में, बैठने में, भोजन में, प्रमाद में, धन कमाने में, परिग्रह में, कौन-सा ऐसा कर्म है जो हमने नहीं बांधा। इस भव में, परभव में अनादिकाल से विचरण करते हुए असंख्यात योनियों में कहां-कहां कौन-कौन से भव में गए। पशु बने तो कर्मों का बंधन, देव बने तो कर्मों का बंधन, नरक के नेरिये बने तब कर्मों का बंधन, मनुष्य बनकर भी कर्मों का बंधन किया। आज ये क्षण हमें बड़े पुण्य से मिले हैं जो आत्म-ध्यान साधना से वीतराग सामायिक की विधि हमें प्राप्त हुई। इस पंचम आरे में जहां दु:ख ही दु:ख है वहां इस साधना से हम जितना चाहें उतनी कर्मों की निर्जरा कर सकते हैं। चुनाव साधक का है। श्वासें आपकी हैं, अधिकार आपका है, सुझाव हमारा है, जैसा आपकी आत्मा को सुख हो वैसा करें।

–निशा जैन

ooo

आत्म-ध्यान के गंभीर साधकों के लिए साधना-सूत्र

सभी वीतराग साधको का गंभीर साधना में प्रवेश मंगलमय हो, शुभ हो। आपकी वीतराग-यात्रा, अन्तर्यात्रा खूब गहरी बढ़ती चली जाए।।

1. साधना के प्रारंभ के क्षण से लेकर जब तक साधना चलती रहे तब तक साधक इस दुनिया के किसी भी जीव के साथ कोई नया रिश्ता स्थापित नहीं करेंगे। किसी गैर को अपना नहीं बनाएंगे। किसी से अनुराग नहीं करेंगे। किसी पर क्रोध नहीं करेंगे। किसी तरह का कोई ऐसा रिश्ता नहीं जहां कर्मों का बंधन हो।
2. हर श्वास में हम भेद-विज्ञान को जीएंगे।
3. सर्दी-गर्मी आदि सारी भेद-रेखाओं का अंत कर देंगे।
4. 'सर्दी बहुत ज्यादा है' ऐसा कहने मात्र से ही कर्मों का बंधन है। हम शरीर से पार चले जाएं जहां सर्दी-गर्मी की पहुंच नहीं है। जब-जब भी लगे कि शरीर को ठंड लग रही है तो महसूस करें कि यह सर्दी मात्र इस विनाशी देह की है। शुद्धात्मा को सर्दी नहीं होती, गर्मी नहीं होती। कोई सामने से आकर कहे तब भी उस पर क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं करेंगे।
5. पूरे साधनाकाल में किसी भी जीव से किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं बनाएंगे।
6. पूरे साधनाकाल में इस जगत में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक किसी जीव की निन्दा नहीं करेंगे और कोई हमारी निन्दा करता हो तो उसे समभाव से स्वीकार करेंगे, जैसे भगवान महावीर ने स्वीकार की।
7. किसी की मौत आए या किसी का जन्म हो, दोनों अवस्थाओं में स्थिर-चित्त रहेंगे। पूर्ण भेद-विज्ञान की स्थिति से जुड़ी होगी हमारी साधना।
8. साधना करवाने वाले के प्रति कृतज्ञता का भाव हो। भोजन मिले तो कृतज्ञता, भोजन न मिले तो कृतज्ञता।
9. पूरे साधनाकाल में हम अपनी आत्मा में रमण करेंगे।
10. हर श्वास भेद-विज्ञान की साधना में जीने का संकल्प।

अरिहंत वाणी

प्र.–आत्म ध्यान में प्रवेश कैसे करें?

उ.–एकत्वभाव, शुद्धात्मभाव के द्वारा स्वरूप बोध की साधना से ध्यान में प्रवेश करें। आंखें बंद। ध्यान मुद्रा में बैठ जाएं। अनुभव करें कि आप पूरे साधना कक्ष में पूरी तरह अकेले हैं। आप इस वर्तमान समय में एक साधक के शरीर में विद्यमान एक शुद्धात्मा हैं। इस समय न आप पुरुष हैं, न स्त्री हैं, न साधु हैं, न साध्वी हैं, न श्रावक हैं, न श्राविका हैं, न धनवान हैं, न निर्धन हैं, न विद्वान हैं, न मूर्ख हैं, न सुन्दर हैं, न कुरूप हैं।

मैं शुद्धात्मा हूं

समस्त भेद-रेखाओं का अंत कर दें। विद्वान, मूर्ख, सुन्दर, कुरूप, अनपढ़, शिक्षित, धनवान, निर्धन ये सभी भेद-रेखाएं एक शरीर की दूसरे शरीर के साथ हैं। मूल-रूप में मैं वही शुद्धात्मा हूं जो नरक के नेरियों में है। मैं वही शुद्धात्मा हूं जो तिर्यंच के पशु-पक्षियों में है। मैं वही शुद्धात्मा हूं जो स्वर्ग के देवी-देवताओं में है। मैं वही शुद्धात्मा हूं जो इस जगत के समस्त मनुष्यों में है। मैं वही शुद्धात्मा हूं जो मेरे घर में काम करने वाले सेवक में है। मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, निरंजन हूं, निराकार हूं, अजर-अमर अविनाशी हूं। मैं वही शुद्धात्मा हूं जो भगवान् महावीर में है। अंतर है तो मात्र कर्म के आवरण का है।

श्वासों को ज्ञाता-द्रष्टा भाव से देखो

पूरे साधना-काल में अपनी आंखें बंद रखना। अपना ध्यान आते-जाते श्वासों पर बना लो। एक श्वास भीतर आ रहा है और एक श्वास विदा ले रहा है। आते श्वास को देखो। जाते श्वास को देखो। एक श्वास शरीर और आत्मा को जोड़े हुए है। श्वास के टूटते ही शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हो जाएंगे। शरीर मिट्टी में मिल जाएगा और आत्मा नई देह धारण करेगी। एक-एक श्वास अनमोल है। प्रत्येक श्वास के प्रति पूर्ण जागरूकता। सारा ध्यान आती-जाती श्वासों पर बना रहे। देखते चले जाओ। विचार आएं, उन्हें महत्व नहीं देना। विचार आएंगे और खुद ही चले जाएंगे। कोई आवाज उठे, उसे कोई महत्व नहीं देना। बुद्धि कोई प्रश्न करे तो उसे भी महत्व नहीं देना।

आती-जाती श्वासों को देखते चले जाओ। एक भी श्वास आपसे मिले बिना न जाए। जब भी लगे कि मन विचारों में भटक रहा है तो उसे पुनः अपनी श्वास पर ले आना। किसी विचार से कोई कहानी नहीं बनानी। न कोई विचार अच्छा है और न कोई विचार बुरा है। विचार, विचार है। वह आता है तो उसे आने दो। हो सकता है बहुत-से विचार आ रहे हों और मन में शंका उठ रही हो कि पता नहीं ध्यान ठीक हो रहा है या गलत। ध्यान न ठीक है, न गलत है। विचार कुछ भी नहीं। जो हमने जन्म से आज तक इकट्ठे किए वही कचरा ध्यान के माध्यम से बाहर आ रहा है।

जब-जब विचार अधिक उत्पन्न होने लगें तब आप पुनः अपनी श्वास पर आ जाओ। अपने इन श्वासों के साथ सोऽहम् की ध्वनि को जोड़ लो। श्वास भीतर तो सो की ध्वनि, श्वास बाहर तो हं की ध्वनि। सो अर्थात् जैसा तू यानि जैसा परमात्मा वैसा ही मैं। सोऽहम्। जो शुद्धात्मा भगवान् महावीर में है, वही शुद्धात्मा मैं हूं। शुद्धात्मा की दृष्टि से कहीं कोई अन्तर् नहीं है। आती-जाती श्वासों के साथ सोऽहम् की ध्वनि को जोड़ लो। जब मन शांत होने लगे तो उसी शांति में बने रहो। मन चंचल हो तो पुनः श्वास या सोऽहम् का सहारा ले सकते हैं अन्यथा शांति में बने रहो। इस प्रकार पूरी एक सामायिक काल में बैठने का पुरुषार्थ करें। नये साधक आत्म-ध्यान शिविर में प्रभु कृपा से साधना विधि सीखें।

लक्ष्य तय करें

प्र.–आत्म ध्यान की गहराई में कैसे जाएं?

उ.–आत्म ध्यान की गहराई में जाने के लिए पहले लक्ष्य को तय करें।

लक्ष्य है सिद्धालय

प्र.–हमारा लक्ष्य क्या है? संसार या सिद्धालय?

उ.–सिद्धालय।

सिद्धालय-सिद्धि हेतु क्या करें?

प्र.–सिद्धालय में जाने के लिए क्या करें?

उ.–इस संसार में रहते हुए अकेलेपन का अहसास करें। पूरी सृष्टि में आप अकेले हैं, पन्द्रह कर्मभूमि में पूरी तरह अकेले, एक साधक के शरीर में

विद्यमान एक शुद्धात्मा हैं आप, जिसका लक्ष्य अपनी आत्मा में छिपे परमात्म-तत्व की खोज है। आपका किसी से राग नहीं, आपका किसी से द्वेष नहीं। आप यह जानते हैं, मानते हैं, यह स्वीकार कर रहे हैं कि यह जीव अनादिकाल से अनंत योनियों में विचरण कर रहा है। आप ध्यान की अनंत गहराइयों में प्रवेश करते हुए आत्मा के चारों ओर लगे समस्त घनघाती कर्मों से निज आत्मा को मुक्त करने का पुरुषार्थ करें और इस आत्मा को चार गति के चक्र से बाहर निकालकर पंचम गति सिद्धालय में लौटाने का पुरुषार्थ करें।

त्रिकाल सत्य है आत्मा

प्र.–मैं कौन हूं?

उ.–मैं एक शाश्वत सत्य हूं, मैं एक त्रिकाल सत्य हूं, शस्त्र मुझे काट नहीं सकता, अग्नि मुझे जला नहीं सकती, मौत मुझे मिटा नहीं सकती, मैं ऐसा शाश्वत सत्य हूं। मैं वही आत्मा हूं जो नरक के नेरियों में है, मैं वही शुद्धात्मा हूं जो तिर्यंच के पशु-पक्षियों में है। मैं वही हूं जो अढ़ाई द्वीप, पन्द्रह कर्मभूमि के प्रत्येक जीव में है।

आत्मस्वरूप

प्र.–मैं शुद्धात्मा कैसा हूं?

उ.–न मैं बड़ा हूं, न मैं छोटा हूं, न साधु हूं, न गृहस्थ हूं, न मैं अच्छा हूं, न मैं बुरा हूं, न मैं सद्गुणों से भरा हूं, न मैं दुर्गुणों से युक्त हूं, न मैं धनवान हूं, न मैं निर्धन हूं, न मैं बुद्धिमान हूं, न मैं बुद्धिहीन हूं, न मैं सर्वश्रेष्ठ हूं, न मैं हीन हूं, मैं सिर्फ-सिर्फ एक शुद्ध आत्मा हूं। शुद्ध-बुद्ध-निरंजन-निराकार-अजर-अमर-शाश्वत-त्रिकाल-सत्य हूं।

सत्यमय होकर जीएं

प्र.–आत्म-ध्यान की गहराई के लिए हमारा पुरुषार्थ कैसा हो?

उ.–हर श्वास में हम सत्य में गहरे उतरते चले जाएं! सत्यमय होना ही आपको, हमको, सबको हमारे घर सिद्धालय लौटाएगा। यही सत्य है जिसने प्रभु महावीर जैसी शुद्धात्माओं को उनके घर सिद्धालय लौटाया। एक क्षण भी आपका सत्य आपसे न छूटे, आप अपने सत्य से न छूटें, इस प्रकार अपने भीतर गहरे-गहरे में जाना ही आत्म-ध्यान की गहराई है।

आत्म-पुरुषार्थ

प्र.–ध्यान साधना करते हुए हम बार-बार अपनी तरफ से पुरुषार्थ करते हैं, फिर भी चूक जाते हैं, भगवान् की आज्ञा का पालन नहीं होता और मन में हीन भावना आती है और संसार के कामों में बार-बार अटक जाते हैं, तब हम क्या करें?

उ.–ऐसा नहीं है कि हमें संसार के काम नहीं करने चाहिएं। परंतु आत्मपुरुषार्थ को कभी विस्मृत न करें। क्योंकि अन्तिम मुक्ति इसी पुरुषार्थ से है। यह भी सत्य है कि यह पुरुषार्थ बहुत कठिन है। कर्मों का बंधन बहुत सरल है और कर्मों की निर्जरा बहुत कठिन है परन्तु ये भी हम जानते हैं कि अनादि के बहुत सारे कर्म इस आत्मा पर अभी शेष रहे हैं, यदि हम इस जन्म में मनुष्य होने के बाद चतुर्थ आरे की साधना मिलने के बाद भी और कर्मों का नवीन बंधन बांधेंगे तो फिर मोक्षपुरी जाना बहुत दुर्लभ होगा। नये कर्मों का बंधन न हो और पुराने बंधे कर्म छूट जाएं, इसलिए भेद-विज्ञान की अनमोल साधना से आपको गुजारने का पूर्ण पुरुषार्थ किया जाता है।

व्यर्थ से बचें

प्र.–प्रभु! जब लोगों से बात करते हैं तो ध्यान में बैठकर ज्यादा विचार आते हैं? ऐसी स्थिति में क्या करें?

उ.–व्यर्थ की बातों में अधिक रस नहीं लिया जाए, जो बात जरूरी है, मेरे सुनने लायक है, बस उसी को सुना जाए। व्यर्थ की बातों में रस नहीं लेना। जैसे अखबार में क्या हुआ, किसके घर किसने क्या किया, ये सारी व्यर्थ की बातें हैं। आपने मात्र उसी बात को ध्यान में रखना है जो आपके लिए अनिवार्य है। व्यर्थ का कचरा तो इस संसार में इतना पड़ा है कि आप जितना चाहो अपने अन्दर डाल सकते हो और जितना कचरा अपने अन्दर डाल दिया उतनी ही ध्यान में विघ्न-बाधाएं पड़ेंगी, क्योंकि जब आप ध्यान में बैठोगे तो वही विचार बनकर आएंगी।

साधना को प्रमुखता दें

प्र.–समाज अपनी ओर खींचती है और सामाजिक व्यवस्थाओं की तरफ ध्यान देने को ज्यादा कहती है, ऐसी स्थिति में साधक क्या करे?

उ.–जहां पर आपकी साधना को प्रमुखता दी जाए वहीं पर आप अपना कार्य क्षेत्र चुनो। संसार के लिए साधना को गौण नहीं करना। संसार को गौण कर सकते हो साधना के लिए। जीवन में हर समय साधना को महत्व दो। यह मनुष्य जीवन आत्म-शुद्धि के लिए मिला है, संसार अनादिकाल से चल रहा है, आगे भी चलता रहेगा, तुम अपने शरीर का उपयोग सिर्फ आत्म-शुद्धि के लिए करो।

समता भाव

प्र.–जीवन में जो भी परिस्थितियां आती हैं, उनका मूल कारण क्या है, और उनका समाधान कैसे करें जिससे जीवन में समाधि बनी रहे?

उ.–यदि हमें रोग आया तो वह रोग निश्चित हमारा उदय कर्म है, सिद्धालय के नजदीक जाना है तो उस उदय कर्म को सहना होगा। यदि निन्दा हुई तब भी उदय कर्म है, उस निन्दा को भी सहना है, तभी हम अपने घर लौटेंगे। यदि जीवन में कोई दु:ख आया तब भी अपना ही उदय कर्म है। यदि कोई पीड़ा, बेचैनी, क्लेश है तो वह भी अपना ही उदय कर्म है। हमें परमात्मा में विलीन होना है तो हर उदय कर्म को समता से सहते चले जाएं। एक दिन यह आत्मा परमात्मा में निश्चित विलीन हो जाएगी अर्थात् सिद्धालय में हमारी आत्मा पहुंच जाएगी।

आराधना–भक्ति

प्र–हम किसकी भक्ति करें और क्या आराधना करें?

उ.–आप अपने भगवान् की भक्ति करें। अपने भगवान् में समा जाएं। एक ही भगवान् है, एक ही परमात्मा है 'नमो सिद्धाणं'। एक ही जाप है, एक ही स्तुति है–'सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु।' बस उसमें समा जाओ, उससे एक हो जाओ। उसकी भक्ति करो, चाहे उसका ध्यान करो अथवा शान्त हो जाओ, यही हैं हमारे परमात्मा सिद्ध भगवान्।

कृतज्ञ–भाव

प्र.–साधना का समापन कैसे करें?

उ.–हर श्वास में कृतज्ञता का भाव करें। आपकी कृतज्ञता समर्पित हो अरिहंत देव के प्रति, जिनशासन के देवी-देवताओं के चरणों में, अपने गुरुदेव के चरणों में जिन्होंने आपको वीतराग धर्म से जोड़ा। बंद आंखों से एवं खुली आंखों से सामने एक ही लक्ष्य रहे–मैं और मेरा सिद्धालय, बस वहीं जाऊंगा, वहीं लौटूंगा, वहीं विलीन हो जाऊंगा! कोई मेरा नहीं, इस अकेलेपन का अहसास करना, अकेलेपन में जीना, इस प्रकार एकत्व भावना को पुष्ट करते जाएं।

घर लौटने की कला

प्र.–हर समय हम किसका ध्यान करें जिससे हम अपने घर सिद्धालय शीघ्र पहुंचें?

उ.–हर समय यह ध्यान रहे कि वे क्षण कब आएंगे जब मेरी आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार होगा। परमात्मा को मैं आज तक मन्दिर, मस्जिद में खोज रहा था, वह मेरा मिथ्यात्व था। वह सत्य में कब परिवर्तित होगा। हर श्वास में मुझे खुद में खोकर खुद को पाना है। अपना परमात्मा, अपना त्रिकाल सत्य, शाश्वत सत्य, हर श्वास में देखोगे कि मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, निरंजन हूं, निराकार हूं, अजर-अमर अविनाशी शाश्वत सत्य हूं। न मुझे भूख है, न प्यास है, न पीड़ा है, न तड़प है, न रोग है, न बेचैनी है, न मुझे सर्दी है, न गर्मी है, मैं शुद्धात्मा हूं। न मेरा कोई अपना है, न कोई मुझसे जुदा है। न मुझे इस संसार को कुछ देना है, न मुझे इस संसार से कुछ लेना है। मैं अकेला ही विचरण कर रहा हूं। अनादि से विचरण कर रहा हूं और अकेले ही अपने घर सिद्धालय लौटूंगा, हर श्वास में यही भाव हो। यही विश्वास, यही प्रार्थना, यही भक्ति, यही स्तुति हो। देखो जीवन में कितने क्षण चले गए, कितने शेष रह गए, कितनी श्वासें प्रमाद में चली गईं, कितनी भोजन में चली गईं। हंसते-हंसते जिंदगी के 40-50-60 वर्ष चले गए। अतः हर क्षण कर्म-निर्जरा करते हुए अपने घर सिद्धालय का लक्ष्य रखें।

कृतज्ञता

प्र.–जिनके निमित्त से धर्म की साधना प्राप्त हुई उनका ऋण कैसे चुकाएं?

उ.–उनके प्रति अपने भीतर में कृतज्ञता ही कृतज्ञता का भाव रखें। भोजन मिले तो कृतज्ञता, न मिले तो कृतज्ञता। हर परिस्थिति में कृतज्ञता का भाव रखने से साधना बढ़ती है। धार्मिक व्यक्ति का यही लक्षण है कि किसी ने आपके लिए कुछ किया है तो उसके लिए कृतज्ञता का भाव रखें।

उपवास का स्वरूप

प्र.–उपवास किसे कहते हैं?

उ.–बाह्य तप के अन्तर्गत भोजन को छोड़ना उपवास कहलाता है। अन्तर् तप के अन्तर्गत उपवास का अर्थ है अपनी आत्मा के करीब आना। साधनाकाल के अन्तर्गत साधक अपनी आत्मा में रमण करते हैं। आप उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, बात करते भी उपवास की स्थिति में रह सकते हैं।

निर्जरा–विधि

प्र.–हर श्वास में हम कर्म-निर्जरा कैसे करें?

उ.–हर पल, हर क्षण, हर श्वास अन्तर्यात्रा की हो। अपने आपमें गहरे प्रवेश करें। खुली आंखों से इस जगत् में किसी ने कुछ भी नहीं पाया। जिसने भी कुछ पाया है सब बंद आंखों से पाया है। न राग, न द्वेष, हर श्वास वीतरागता की हो।

साधना–विधि

प्र.–प्रभो! हम खुली आंखों से साधना कैसे करें?

उ.–खुली आंखों से पढ़ा हुआ ज्ञान आत्म–ज्ञान नहीं है। प्रारंभ में आत्म–ज्ञान का दर्शन करने के लिए इन आंखों को बंद रखना अनिवार्य है। जैसे ही ये आंखें बंद होंगी वैसे ही बाहर के जगत से जो आंखों के माध्यम से एक रिश्ता जुड़ा था वह समाप्त हो जाएगा और जीव अपने सत्य का बोध करने में समर्थ हो जाएगा। जैसे–जैसे साधना बढ़ेगी वैसे–वैसे साधक खुली आंखों से भी अन्तर्यात्रा की साधना करते हुए आत्म–ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

आत्म–ध्यान के द्वारा भीतर में गहरे प्रवेश करने पर एक सामायिक–काल के अन्तर्गत न जाने आप कितने ही असंख्यात कर्मों की निर्जरा कर सकते हैं। हर पल, हर क्षण, हर श्वास बस निर्जरा ही निर्जरा।

शुद्धात्म ज्ञान

प्र.–प्रभो! कर्म आत्मा से कैसे चिपकते हैं और कैसे अलग होते हैं? इसको हम कैसे समझें?

उ.–यह समझने का विषय नहीं है। आपको इतना ही समझना है कि आपकी आत्मा के चारों ओर असंख्यात कर्म लगे हुए हैं और आपने उन्हें क्षय करना है। यह बुद्धि का ज्ञान है और बुद्धि का ज्ञान काम नहीं आएगा। आवश्यक है शुद्धात्म-ज्ञान।

विहरमान भगवान्

प्र.–प्रभो! विहरमान भगवान् के बारे में लोग जानना चाहते हैं, आप कुछ कृपा करें!

उ.–विहरमान वे हैं जो वर्तमान में विचरते हैं, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में बीस विहरमान विचर रहे हैं। चतुर्थ आरे का प्रभाव होने से महाविदेह में विहरमान विचरते हैं और पंचम आरे का प्रभाव होने से भरतक्षेत्र में विहरमान नहीं विचरते। जो विचरते हैं वे साक्षात् हैं। देव समवसरण की रचना करते हैं और समवसरण की रचना होने से वहां पर असंख्यात भवी आत्माएं आती हैं, पवित्र पावन देशना श्रवण करते हुए वे भव्य आत्माएं अपने घर सिद्धालय का मार्ग तय करते हैं और वहां लौटने में समर्थ हैं।

प्र.–वर्तमान में भरतक्षेत्र से साधक मोक्ष में क्यों नहीं जा सकता?

उ.–सर्वप्रथम तो भरतक्षेत्र में बहुत ही कम ऐसे साधु-मुनिराज मिलेंगे जो यथारूप महाव्रतधारी हैं। जिनके जीवन में किसी प्रकार की माया, छल, कपट, राग, द्वेष, निन्दा, अपमान इस प्रकार का कुछ भी कषाय नहीं है ऐसे साधु-मुनिराज का पंचम आरे में मिलना ही कठिन है और मिल गए तो पूरी तरह यह संभव नहीं कि उनके चरणों में बैठकर आप सीधे मोक्ष चले जाएं क्योंकि पंचम आरे का प्रभाव है।

सिद्धालय कैसे लौटें?

प्र.–प्रभो! तो फिर हम मोक्ष जाने के लिए क्या करें?

उ.–भरतक्षेत्र की प्रत्येक भवि आत्मा को यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वह महाविदेह क्षेत्र में अगला जन्म ले क्योंकि महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष का द्वार खुला है। वहां जैसे-जैसे कर्मों की निर्जरा करते चले जाओगे अपने घर सिद्धालय लौट पाओगे। अरिहंत मात्र निमित्त हैं। अरिहंत का निमित्त लेकर बहुत-सी भवि आत्माएं अपने घर सिद्धालय लौट चुकी हैं और बहुत-सी लौटेंगी।

सरलता है उपाय

प्र.–क्या ऐसी प्रार्थना करने से प्रभो! हमारी पात्रता बन सकती है?

उ.–जितना निष्कपट जीवन होगा, पूरी तरह जो सरल होगा, जो मन, वचन, काया से एकरूप होगा वह महाविदेह क्षेत्र में आएगा। महाविदेह में आने के लिए सरलता व मन, वचन, काया की एकरूपता अनिवार्य है।

भावानुरूप सिद्धि

प्र.–हमारे यहां आगमों में वर्णन आता है कि साधु और श्रावक की गति देवगति है, तो हम महाविदेह की प्रार्थना करते हैं और हम भाव रखते हैं कि हम मनुष्य बनेंगे यह कैसे संभव है?

उ.–देखो, भावना अपनी है। यदि आपकी भावना महाविदेह क्षेत्र में जाने की है तब आपको महाविदेह मिलेगा और आपकी भावना यदि देवलोक में जाने की है तो देवलोक मिलेगा। साधु देवलोक इसलिए जाएगा क्योंकि पंचम आरे के साधु के जीवन में पूजा-पाठ है और पूजा-पाठ से पुण्य का बंधन करेगा और पुण्य के बंधन से वह देवलोक जाने का सामर्थ्य रखता है। परन्तु जिसके जीवन में ध्यान, कायोत्सर्ग है, जहां कर्मों की निर्जरा है, जो एक बार ज्ञाता-द्रष्टा भाव को अपना ले, वह सरल हो जाएगा और सरलता से वह महाविदेह क्षेत्र में जाएगा। अपनी भावना निश्चित पूर्ण होती है।

प्राण-प्राण प्रार्थना हो जाए

प्र.–प्रभो! हम अपने समक्ष क्या लक्ष्य रखें एवं कैसे प्रार्थना करें?

उ.–सामने एक ही लक्ष्य रखो, मुझे मेरे घर लौटना है। कोई कैसी ही प्रार्थना करे हमें उससे कोई मतलब नहीं, मेरी प्रार्थना स्वतंत्र है। बस, मुझे मेरे घर लौटना है चाहे कुछ भी हो। परिस्थितियां अनुकूल बनें या प्रतिकूल बनें।

यह सत्य है कि प्रभु महावीर की बहुत परीक्षाएं हुईं और यह भी सत्य है कि अपने घर लौटना इतना सरल नहीं है। अपने घर लौटना बहुत कठिन है। आज आपको सरल दिखता है, परन्तु यह सरल नहीं, अभी तो बहुत-सी परीक्षाओं से गुजरना है। हर श्वास बस एक ही प्रार्थना, भीतर में कृतज्ञता, एक सम्पन्नता, एक सम्पूर्णता। बहुत कुछ मिला है, जो मिला है वह बहुत है और कुछ मिले न मिले, अपने घर लौटना है, यह प्रार्थना।

साधना कैसे बढ़े?

प्र.–प्रभो! बंद आंखों से की हुई साधना में आनंद आता है। साधना को कैसे आगे बढ़ाएं?

उ.–खुली आंखों से भी साधना का अभ्यास कीजिए! बाहर बहुत शोर है, उस में हमें कैसे जीना है, यह सीखना अति आवश्यक है। साधक को अधिक सम्पर्क बनाने की आवश्यकता नहीं। एक साधक का सम्पर्क जितना बाहर के जीवों से कम होगा उतनी साधना में प्रगति होगी। किसी से अधिक सम्पर्क नहीं बनाना, इस बात को अपने ध्यान में रखना और अपने संयम जीवन में कोई दोष न आए, यह एक महत्वपूर्ण विषय है, इस बात पर विशेष ध्यान रखें।

कर्म बन्धन का मूल : आसक्ति

प्र.–दैनिक जीवन में कर्म का बंधन कैसे होता है?

उ.–एक सामान्य जीव 24 घंटे किसी न किसी विचार में उलझता है। बिना विचार के उसका एक क्षण भी नहीं बीतता। कभी आगे का विचार, कभी पीछे का विचार, बहुत ही कम ऐसे जीव हैं जो वर्तमान में जीते हैं। प्रतिपल प्रतिक्षण यदि इन विचारों में उलझते रहेंगे तो ऐसे असंख्यात कर्मों का बंधन होगा। हमें पता नहीं लगता पर किसी न किसी माध्यम से कर्म का बंधन निश्चित हो रहा है। जैसे आपने भोजन किया, भोजन में रस लिया, उस समय आपको कर्म का बंधन हुआ। आपने नींद ली और नींद के बाद आपने एक अलग तरीके का भाव रखा कि मुझे अच्छी नींद आई या आज नींद नहीं आई, तब भी आपने कर्मों का बंधन किया। आपने वनस्पति को काटा, छेदा, भेदा, फिर उस पर गर्व किया तो भी कर्म का बंधन हुआ। धन कमाने के

लिए आपने झूठ बोला, माया की वहां भी कर्म का बंधन है। आपके पास कोई रिश्तेदार आया, आपने उससे कपट से बात की, उसके समक्ष बैठकर किसी की निन्दा की, अपमान किया, वहां पर भी कर्म का बंधन हुआ। आप बाजार में गए, आपने कुछ परिग्रह को देखा, चाहे खरीदा नहीं, पर मन में खरीदने का भाव आया, तब भी कर्म का बंधन हुआ। ऐसे जीव प्रतिपल प्रतिक्षण कर्म का बंधन किए जा रहा है।

निर्जरा के साधन

प्र.–प्रभो! इन कर्मों की निर्जरा कैसे करें, इसका सरल मार्ग बताएं?

उ.–यदि आप इस कर्म के बंधन से हटकर ज्ञाताद्रष्टा का भाव रखते हैं, चिंतन करते हैं कि मैं मात्र जानने वाला एवं देखने वाला हूं तब आपको कर्म नहीं लगता और दूसरी तरफ से जब आप मानसिक रूप से सोऽहं का स्मरण करते हैं, जैसा तू वैसा मैं, तब ऊंचा–नीचा, छोटा–बड़ा, ये भाव पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं। इससे भी आपके कर्मों की निर्जरा होती है। ज्ञाताद्रष्टा का भाव, सोऽहं का भाव, शुद्धात्म–भाव, ये सारे भाव कर्म–निर्जरा के अनमोल साधन हैं।

प्रतिक्षण निर्जरा

प्र.–प्रभो! किस तरह से साधना करें जिससे चौबीस घंटे कर्म–निर्जरा कर सकें?

उ.–बंद आंखों से एक सामान्य जीव मात्र एक–दो घंटे, तीन घंटे, अधिक से अधिक दस घंटे की साधना करके या तो पुण्य का बंधन या फिर निर्जरा कर सकता है। परन्तु जिसको ज्ञाताद्रष्टा भाव आ गया उसे चौबीस घंटे आंखें बंद करने की भी आवश्यकता नहीं है। परिस्थितियां अनुकूल हों या प्रतिकूल, ध्यान करने का कोई उत्तम आसन मिले या न मिले, ज्ञाता–द्रष्टा भाव में प्रतिक्षण रमण करने वाला साधक निश्चित कर्म–निर्जरा कर सकता है।

कर्मक्षय की विधि : भेद–ज्ञान

प्र.–जीव कर्म–क्षय करने में स्वतंत्र कैसे है?

उ.–सामान्य रूप से व्यक्ति यह महसूस करता है कि मैं परतंत्र हूं, मेरे को इतनी समस्याएं हैं–घर, परिवार, धंधा, इस कारण से मैं कैसे साधना करूं? किन्तु जीव चाहे तो इस सबके बीच में रहते हुए भेद-ज्ञान के द्वारा कर्म क्षय कर सकता है। आत्म-चिन्तन के लिए शरीर के कार्य और शरीर के संबंध बाधक नहीं हैं। आवश्यकता है आत्म-दृष्टि की तथा स्वतंत्र अनुभव की। अतः प्रत्येक जीव आत्म-शुद्धि के लिए स्वतंत्र है।

अन्तरहित ज्ञान : अनन्त ज्ञान

प्र.–प्रभु! अनंतज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उ.–अनंतज्ञान यानि ऐसा ज्ञान जिसका कोई अंत ही नहीं है। जो हर जीव में है। प्रत्येक जीव अपने पुरुषार्थ से ज्ञानावरणीय कर्म के आवरणों को हटाता हुआ अनंतज्ञान को प्राप्त होता है।

आत्मज्ञान

प्र.–ज्ञान इस भव है, परभव है और हमेशा है, ऐसा कहा जाता है। क्या यह ज्ञान आगमों का ज्ञान है? कृपा कर स्पष्ट करें!

उ.–प्रत्येक आत्मा में अनंतज्ञान है। यह आत्मा का निजगुण है। आगमों या पुस्तकों में पढ़ा हुआ ज्ञान तो मति या श्रुत हो सकता है और यह ज्ञान केवल इस शरीर तक है। जब यह शरीर नष्ट होगा तब हम सारा ज्ञान भूल जाएंगे। कभी-कभी तो यह भी देखने में आता है कि आयु के अन्तिम पड़ाव में भी व्यक्ति मतिज्ञान, श्रुतज्ञान भूल जाता है परन्तु आत्म-ज्ञान उसमें सदा से है। हर भव में उसके साथ है चाहे वह नरक का नेरिया हो या देवलोक का देवता। भरत, ऐरावत या महाविदेह का मनुष्य हो या फिर तिर्यंच हो। ढाई द्वीप की पन्द्रह कर्म भूमियों में जितने भी जीव हैं उन सबमें आत्म-ज्ञान है। जो जीव भेद-विज्ञान द्वारा ज्ञानावरणीय कर्म क्षय करता है वह आत्म-ज्ञान के नजदीक चला जाता है और एक समय आने पर पूर्ण आत्म-ज्ञान प्रकट होता है। इसीलिए ऐसा कहा गया है कि ज्ञान इस भव है, परभव है और हमेशा है। सिद्धालय में विराजित सिद्ध भगवंतों का भी प्रथम गुण अनंतज्ञान है।

एकत्वानुप्रेक्षा

प्र.–एकत्व भावना का अनुभव कैसे करें? उसकी साधना विधि पर कृपया प्रकाश डालें!

उ.–आंखें बंद करके किसी भी सुख-आसन में बैठ जाएं। अकेलेपन का अहसास करें, अनुभव करें। इस क्षण तक इस देह ने जो भी कुछ किया, कराया या अनुमोदा उसे मात्र इस शरीर का अंग जानो। इस शरीर का अंग मानो। महसूस करो कि आप पूरी तरह अकेले हैं, पूरी तरह अकेले, इस शहर में, इस राज्य में, इस देश में, इस विश्व में, पूरे ब्रह्माण्ड में, तीनों लोकों में पूरी तरह अकेले।

आप ये जान रहे हो, ये मान रहे हो, ये स्वीकार कर रहे हो कि हर रिश्ता असत्य की नींव पर खड़ा है और मैं किसी विनाशी रिश्ते में स्वयं को नहीं बांधूंगा। न मैं किसी का हूं, न किसी का हो सकता हूं। जब मैं स्वयं में किसी का नहीं तो कोई मेरा हो, ऐसा भाव भी नहीं मेरे भीतर में। न मैं जैन हूं, न मैं बौद्ध हूं, न मैं सिक्ख हूं, न पुरुष हूं और न स्त्री हूं। बस मैं सिर्फ एक शुद्धात्मा हूं।

अकेला आया। अकेले नरक में गया। वहां की वेदनाओं को सहा। अकेले पशु बना। कभी मेंढ़क बना। कभी मगरमच्छ बना। कभी शेर बना। कभी हाथी बना। कभी चींटी बना। कभी मक्खी बना। कभी देव बना। कभी पहले देवलोक में गया। पहले से लेकर बीसवें तक कौन-कौन से देवलोक की यात्रा की। वहां से आयुष्य पूर्ण हुआ।

मनुष्य बना। कभी जैन परिवार में पैदा हुआ। कभी सिक्ख घर में जन्म हुआ। कभी मुस्लिम बना तो पीर को पूजा। कभी हिन्दू बना तो मन्दिर में जाकर आरती की। कभी समस्त अंगों से युक्त बना। कभी आंखों से अंधा बना। कभी कानों से बहरा बना। कभी टांग से लंगड़ा हुआ। कभी विद्वान् बना तो कभी मूर्ख बना। कभी धनवान बना तो कभी निर्धन बना। कभी मालिक बना तो कभी सेवक बना। कभी उच्चकुल में जन्म हुआ। कभी छोटे घर में जन्म हुआ। कौन-सी ऐसी योनि है, कौन-सा ऐसा भव है, जहां हम नहीं भटके। चार गति, चौरासी लाख जीव योनियों से गुजरे हैं।

कभी भारत देश में जन्म हुआ। कभी कैनेडा में जन्म हुआ। कभी मांस-मछली खाई तो कभी संन्यासी हुआ। कभी बहुत सुन्दर रूप पाया तो कभी कोढ़ी भी बना। कभी झूठ बोला, कभी चोरी की। कभी निन्दा की। कभी

धन को ही अपना लक्ष्य बनाया। कभी अपने आपको सर्वश्रेष्ठ जाना। कभी सारा रस भोजन में बनाकर रखा। कभी भीतर में अत्यंत वासना का भाव आया। कभी नपुंसक बना। कभी माया की। कभी लोभ किया। कभी आसक्ति रखी। कभी अनुराग किया। कभी द्वेष किया। कभी हिंसा की। हर कर्म किया है मैंने।

ऐसे ही नहीं यह आत्मा चार गति में विचरण कर रही है। अब महसूस करो कि आप पूरी तरह अकेले हो। पूरी तरह अकेले। न झूठ, न चोरी, न असत्य, कुछ भी नहीं। चारों ओर कुछ नहीं है, बस अकेले। न शरीर को कोई रोग है, न इस संसार का कोई लक्ष्य है। सामने एक लक्ष्य है सिद्धालय। इस प्रकार सिद्धालय का ध्यान करते हुए 48 मिनिट तक बैठकर एक सामायिक का ध्यान करें।

समस्या का समाधान

प्र–जीवन में बहुत-सी समस्याएं आती हैं, उनका समाधान कैसे करें?

उ.–आने वाली समस्या के समाधान के लिए 24 घंटे का समय दें। आप शांति एवं मौन में रहें। इस बीच समस्या का समाधान स्वयमेव हो जाएगा।

साधना–विधि

प्र.–साधना कैसे करें?

उ.–साधना नि:शंक भाव से निरन्तर करते रहें। किसी प्रकार की शंका न करें। फिर भी प्रश्न है तो समाधान कर लें। निरन्तर वीतराग दशा, परमात्म दशा बनाये रखें।

व्यवहार–विधि

प्र.–श्रावक-श्राविका चातुर्मास में कैसा व्यवहार करें जिससे कर्म-निर्जरा हो?

उ.–1. अपने क्षेत्र में विराजित पंच महाव्रतधारी साधु-साध्वी को नमो लोएसव्वसाहूणं के स्वरूप में उन्हें शुद्ध भावों से अरिहंत परमात्मा के दूत समझकर नमन करें।

2. उनके मुखारविन्द से भगवान् की जो भी वाणी आप तक पहुंचे उसका सम्मान करें, उसे जीवन में उतारने का प्रयास करें। उनकी प्रवचन शैली को अच्छे या बुरे का निर्णय न देते हुए उन गहरे भावों को जानें जो आप तक पहुंचाना चाहते हैं। उनकी शैली पर प्रतिक्रिया करने से, अच्छा कहने से राग एवं उनके अहंकार को पुष्ट करते हैं और उनकी शैली में दोष निकालकर स्वयं के अहंकार को पुष्ट करते हैं। इसके साथ ही उनके मुखारविन्द से निकला हर शब्द मूल रूप से तो भगवान् की वाणी है और भगवान् की वाणी को अच्छे और बुरे से तोला नहीं जाता, उनकी वाणी तो उत्तम है। अतः प्रतिक्रिया करने से कर्मों का बंध एवं भगवान् की वाणी की आशातना करते हैं।

3. शुद्ध भावों से साधु-साध्वी को आहार-पानी बहराकर कर्मों की निर्जरा कर सकते हैं। किन्तु कई बार आहार बहराकर साधु के बारे में प्रतिक्रिया करके कर्मों का बंध भी कर लेते हैं, अतः जागरूकता रखें।

4. श्रावक सामायिक, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग से भी कर्म-निर्जरा कर सकते हैं तथा कंदमूल का त्याग, दान, शील, तप एवं भाव से कर्म-निर्जरा कर सकते हैं।

निद्रा

प्र.–ध्यान में नींद क्यों आती है?

उ.–इस जन्म में देखो, प्रतिदिन कितने घंटे नींद में जा रहे हैं। एक दिन में कम से कम 6-7 घंटे प्रमाद में जाते हैं। इन्हीं घंटों को अपनी आयुष्य के साथ गुणा करके देखो, तो इस जीवन में कितने घंटे प्रमाद किया। इस भव में मनुष्य की देह पाने के बाद, धर्म की शरण में आने के बाद भी अगर इतना प्रमाद किया तो अनादिकाल से विचरते हुए कितना प्रमाद किया होगा, सहज समझा जा सकता है। तो अब जब ध्यान में बैठते हैं तो कुछ-कुछ जीव ऐसे होते हैं जिनका प्रमाद का उदय कर्म तीव्र होता है। उसी तीव्र कर्म के उदय के प्रभाव से ध्यान में बैठने पर जीव नींद या आलस्य में चला जाता है। ध्यान में नींद तब आती है जब हम ध्यान बिना मन के जबरदस्ती से नियम की पूर्ति के लिए मजबूरी समझकर करते हैं।

निद्रा-निवारण

प्र.–ध्यान में नींद आये तो क्या करें?

उ.–सर्वप्रथम अपना लक्ष्य तय करो। भगवान् के चरणों में प्रार्थना करो–''हे प्रभो! आपकी कृपा से ध्यान में प्रवेश कर रहा हूं। मेरी नींद मेरा आलस्य बाधक न बने। मैं ध्यान की अनंत गहराइयों तक चला जाऊं, मैं आपके चरणों में पूर्ण समर्पण कर रहा हूं।'' इसी समर्पण भाव में आप ध्यान में प्रवेश करो और फिर भी नींद आने लगे तो खड़े हो जाओ। ध्यान के समय आसन ऐसा चयन करें जो आपको नींद में न ले जाए, जैसे सहारा लेकर बैठना, बिस्तर पर ध्यान करना, भोजन भर-पेट करने के बाद ध्यान करना, आदि बातों का ध्यान रखें तो आप नींद से बच सकते हैं।

लक्ष्य

प्र.–हमारा लक्ष्य क्या हो?

उ.–हमारा लक्ष्य सिद्धालय अर्थात् **'सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु'** हो, क्योंकि हम अनादिकाल से चार गति चौरासी लाख जीव योनी में भ्रमण कर रहे हैं। अतः हमारा लक्ष्य संसार न होकर सिद्धालय हो। अभी हमने हमारा लक्ष्य तय नहीं किया है, क्योंकि जिस साधक का लक्ष्य तय है उसकी हर श्वास उसी लक्ष्य की ओर बढ़ती है। वह जानता है कि श्वासें कम हैं और कर्मों का बोझ अधिक है। जो एक बार इस ज्ञान से गुजर गया उसे ध्यान में नींद आने का सवाल ही नहीं है।

राग और प्रेम

प्र.–राग एवं प्रेम में क्या अन्तर है?

उ.–राग एक पर होता है, प्रेम सब पर होता है। राग में बंधन है। प्रेम में समत्वभाव है। राग में मोहभाव है। प्रेम में मोह-वासना नहीं है। भीतर के विकारों को दूर करने के लिए राग को प्रेम में बदलें, द्वेष को करुणा में, क्रोध को क्षमा में, मान को विनय में, माया को सरलता में बदलें। कोई ईर्ष्या करे तो उसे समताभाव से स्वीकार करें, यही मुक्ति का सरल मार्ग है।

अहंकार-शून्यता

प्र.–प्रभो! हम अहंकार-शून्य कैसे हों?

उ.–निश्चय दृष्टि से सब कुछ व्यवस्थित चल रहा है। जब ऐसा भाव होगा तो अहंकार शून्य होगा। विनय धर्म की प्राप्ति होगी। कृतज्ञता का भाव बना रहेगा।

परमात्म-दृष्टि

प्र.–परमात्म दृष्टि में कैसे रहें?

उ.–मेरे दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे चारों दिशाओं में मेरे भीतर परमात्मा विराजमान है, मैं स्वयं परमात्मा हूं, ऐसे भाव से तीनों लोकों को देखें। तीनों लोकों में सब कुछ व्यवस्थित चल रहा है। उस व्यवस्थित में परमात्म दर्शन करें।

अप्पा सो परमप्पा

प्र.–परमात्मा मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में है या कहीं अन्यत्र है?

उ.–परमात्मा किसी मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में नहीं है। वह हर आत्मा में विराजमान है।

प्रत्येक आत्मा में छिपा है परमात्मा

प्र.–हर आत्मा में परमात्मा है, यह हम कैसे समझें?

उ.–आत्मा कब अपने कर्मों से मुक्त हो जाए। बेशक हमें लगे कि हम परमात्मा हैं पर सामने वाला नास्तिक है परन्तु किसी भी समय उदय कर्म के प्रभाव से हमारे सामने वाला जीव गुरुजनों के सत्संग में जाकर श्रद्धा, विनय के द्वारा कितने ही कर्मों को क्षय कर लेवे। यदि जीव को एक क्षण के लिए भी सत्य का बोध हो जाए तो घनघाती कर्म का क्षय कर सकता है। चाहे नरक का जीव हो, तिर्यंच का जीव हो, मनुष्य हो या देव हो सबकी आत्मा समान है। सबमें परमात्मा होने की क्षमता है।

आज हम अज्ञानवश पत्थर की मूर्ति को तो नमन कर लेते हैं परन्तु प्रत्यक्ष विभिन्न रूपों में जीवित परमात्मा की अवहेलना कर उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। आप स्वयं भी परमात्मा हैं, आपके माता-पिता व गुरुजनों में भी

परमात्मा है। रिश्तेदार-सगे-संबंधी में भी परमात्मा है इसीलिए किसी की निन्दा मत करो! कौन जाने वह आपसे पहले मुक्त हो जाए!

कभी-कभी हमको लगता है, सामने वाला जीव झूठ बोलता है, वह झूठा है। आप स्वयं से पूछो, क्या आपने कभी झूठ नहीं बोला। क्या आपने कभी चोरी नहीं की। अन्तर इतना है कि आपका कषाय पर्दे के पीछे है और उसका कषाय प्रकट हो गया है। यदि कोई हमारी निन्दा करे तो हमें कितना कष्ट होता है! यह सोचो और किसी की निन्दा मत करो तथा उसके परमात्मभाव का सम्मान करो।

किसी भी जीव में हजार अवगुण हों, वे अवगुण उसके शरीर के हैं। मूलरूप में तो वह शुद्धात्मा है। इसीलिए अरिहंत कहते हैं–सबका सम्मान करो, सृष्टि के हर कण में परमात्मा है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, पांच भरत, पांच ऐरावत, पांच महाविदेह, 15 कर्म भूमि, ढाई द्वीप के समस्त जीवों में परमात्मा है।

प्रमाद से बन्ध

प्र.–क्या प्रमाद से कर्मों का बंधन होता है?

उ.–हां, प्रमाद से सबसे अधिक कर्मों का बंधन होता है। प्रमाद अर्थात् बेहोशी की अवस्था, जहां-जहां जीव बेहोशी में रहता है वहां-वहां सत्य से परे जीता है और जहां-जहां असत्य है वहां निश्चित कर्मों का बंधन है।

आलोचना–विधि

प्र.–प्रभो! मन-ही-मन दिन भर किए गए कर्मों की आलोचना कैसे करें?

उ.–भगवान् ने फरमाया–साधक को निम्नोक्त भावों द्वारा आलोचना करनी चाहिए। यथा–हे प्रभो! जो भी कर्म मेरे इस देह ने किया उसे आपकी साक्षी से आपको समर्पित करता हूं। सारा कर्म इस विनाशी शरीर ने किया। भोजन किया तो इस शरीर ने किया। यदि भोजन में मैंने किंचित् मात्र भी रस लिया हो, भोजन को लेकर कोई क्रिया-प्रतिक्रिया की हो, करायी हो या करने वाले का अनुमोदन किया हो, भोजन को लुब्ध-भाव से किया हो, इसके लिए

मैं अन्त:करण से क्षमा मांगता हूं। ऐसे ही भगवन्! मैं नींद में गया, नींद में, प्रमाद में, स्वप्न में, स्वप्न के 108 दोषों में जहां कहीं भी कर्म-बंधन हुआ हो उसके लिए मैं अन्त:करण से क्षमा मांगता हूं। ऐसे ही भगवन्! मेरे द्वारा दिन-भर उठते-बैठते, चलते-फिरते किसी जीव की हिंसा हुई हो, अठारह पाप-स्थानों का सेवन हुआ हो तो उसके लिए मैं अन्त:करण से क्षमा मांगता हूं। दिन-भर में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, दो इन्द्रिय से लेकर पांच इन्द्रिय तक किसी भी प्राणी की हिंसा, विराधना हुई हो, उसके लिए मैं अंत:करण से क्षमा मांगता हूं। दिन-भर में बातचीत करते हुए किसी की निन्दा हुई हो, कोई क्रिया-प्रतिक्रिया हुई हो उसके लिए अन्त:करण से क्षमा मांगता हूं। मैं आवश्यक क्रिया के लिए गया, वहां पर जो भी दोष आया उसके लिए मैं अन्त:करण से क्षमा मांगता हूं। दिन-भर हर कार्य करते हुए कहीं पर भेद-विज्ञान छूट गया हो तो उसके लिए मैं क्षमा मांगता हूं। प्रात:काल से लेकर अब तक जो-जो भी कर्म किया वह सब कर्म इस विनाशी शरीर ने किया। मैं शुद्ध आत्मा हूं। मैं उन समस्त कर्मों को आपके श्रीचरणों में समर्पित करता हुआ आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूं।

विचार-मुक्ति का उपाय

प्र.-प्रभो! ध्यान करते हुए हम विचारों में उलझ जाते हैं या बेहोशी में चले जाते हैं, इसके लिए क्या करें?

उ.-भगवान् ने फरमाया-विचारों को देखो, क्योंकि आप एक शुद्धात्मा हो। आपका स्वभाव मात्र जानना और देखना है। विचारों में उलझने का कारण पूर्व-जन्म के संस्कार हैं। आपको विचार या बेहोशी में न जाते हुए मात्र शांत रहना है और हर परिस्थिति में प्रकृति को स्वीकार करना है, क्योंकि आप सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा हैं।

धर्म-शुक्ल का अन्तर

प्र.-भगवन्! धर्म-ध्यान और शुक्ल-ध्यान में क्या अन्तर है?

उ.-भगवान् ने फरमाया-धर्म-ध्यान है माला, पाठ, जप, स्वाध्याय। शुक्ल-ध्यान है समाधि की गहरी अवस्था। ध्यान और कायोत्सर्ग ये शुक्ल ध्यान के अंग हैं, बाकी के दस तप धर्म-ध्यान के अंग हैं। ध्यान की गहराई,

आतापना, कायोत्सर्ग आदि में हम शुक्ल-ध्यान में होते हैं। हम जब-जब ज्ञाता-द्रष्टा भाव में होते हैं तब शुक्ल-ध्यान में होते हैं।

प्रतिक्रिया है बन्धन

प्र.–क्या प्रतिक्रिया में कर्मों का बंधन है?

उ.–भगवान् ने फरमाया–प्रतिक्रिया करते ही दोष लगता है। प्रतिक्रिया में हम स्वभाव से दूर हटकर विभाव में आते हैं तब कर्म बंधन होता है। सहज प्रतिक्रिया होने पर भी दोष लगता है। उसके लिए आलोचना कर क्षमा-याचना करें।

प्र.–सर्दी बहुत ज्यादा है। ऐसा कहने में क्या कर्म-बंधन है?

उ.–अपने मुख से एक बार भी ऐसा नहीं कहेंगे कि सर्दी बहुत ज्यादा है, ऐसा कहने मात्र से ही कर्मों का बंधन है। हम शरीर से पार चले गए, जहां सर्दी नहीं, गर्मी नहीं। जब-जब लगे कि शरीर को ठण्ड लग रही है तो महसूस करें कि यह सर्दी मात्र इस विनाशी देह की है। शुद्धात्मा को सर्दी नहीं, गर्मी नहीं। कोई आपके सामने आकर कहे कि सर्दी बहुत ज्यादा है तो उस पर भी क्रिया-प्रतिक्रिया नही करेंगे।

भेद विज्ञान

प्र.–यदि प्रमाद में कर्मों का बंधन है तो नींद कैसे लें? किसी को सोने के लिए कहें या नहीं?

उ.–आज हमारी यह धारणा बन चुकी है कि देह को विश्राम देना है तो नींद आवश्यक है परन्तु जब हम ध्यान में प्रवेश करते हैं तो स्वतः नींद कम होने लगती है और फिर भी शरीर को विश्राम देना है तो सोने के पहले भेद-विज्ञान कीजिए कि–"मैं एक शुद्धात्मा हूं, शरीर विश्राम कर रहा है, सोना शरीर का स्वभाव है, आलस्य शरीर का है, मुझे नींद नहीं, मुझे आलस्य नहीं, मैं शुद्धात्मा और ज्ञाता-द्रष्टा मात्र हूं। ऐसे में रात को सोते हुए भी हम कर्मों के बंधन से बच जायेंगे। अन्यथा रात भर कर्मों का बंधन होगा। इसी प्रकार सुबह उठते ही फिर देखियेगा कि शरीर ने आलस्य किया, प्रमाद

किया, मैं तो पूरी रात जागरूक था। यह है भेद-विज्ञान की परम साधना जिसमें बन्धन नहीं, मुक्ति है।

भाव प्रतिक्रमण करें

प्र.–भगवन्! हमें प्रतिक्रमण के पाठ नहीं आते और याद करने की क्षमता नहीं है फिर हम क्या दिन-भर के कर्मों से मुक्त नहीं हो पायेंगे?

उ.–पाठ याद करें तो उत्तम है, परन्तु यदि याद न हो तो भाव प्रतिक्रमण कीजिये, यथा–''हे परमात्मा! आज दिवस भर में मेरे मन, वचन व काया से इस जगत के किसी भी जीव को किंचित् मात्र भी कष्ट हुआ हो तो मैं आपकी साक्षी से आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करता हूं। यदि मेरे द्वारा किसी की निन्दा हुई हो तो मैं क्षमा मांगता हूं। मैंने असत्य कहा, चोरी की, क्रोध किया, लोभ किया, राग-द्वेष आदि अन्य कषाय मेरे भीतर आए हों तो मैं क्षमा-याचना करता हूं। कृपा करना कि मैं इन सब कषायों से मुक्त हो सकूं। यदि मैं दिन-भर बेहोशी में जीया, असत्य में जीया, स्वयं को सर्वश्रेष्ठ जाना, औदारिक देह का पोषण कर कार्मण शरीर को पुष्ट किया हो तो आपश्री की साक्षी से क्षमा याचना करता हूं। मेरे मन, वचन और काया से इस जगत के किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, गुरुदेवों की, पंच महाव्रतधारी संत-मुनिराजों की, किसी पाठ-स्तोत्र की आशातना हुई हो तो मैं क्षमा-याचना करता हूं।

कर्म–बन्धन

प्र.–भगवान् से पूछा–सबसे ज्यादा कर्मों का बंधन किस अवस्था में है?

उ.–भगवान् ने फरमाया–सबसे ज्यादा कर्मों का बंधन प्रमाद में है। क्योंकि जीव जब प्रमाद में है तब बेहोशी में है अर्थात् अपने सत्य से परे है और जहां सत्य नहीं यानी असत्य है वहां निश्चित कर्मों का बंधन है। क्योंकि जब हम सोते हैं तो समझते हैं बहुत बढ़िया नींद आयी या नींद कब आयेगी। अगर जन्म से आज तक की उम्र को देखते हैं तो देखो जन्म से आज तक जितने घंटे हम सोये, वे सब प्रमाद के क्षण थे। मनुष्य जीवन के कितने महत्वपूर्ण समय को हमने हाथ से यों ही खो दिया।

जागरुकतापूर्वक विश्राम लें

प्र–क्या जीव सोये नहीं? अगर सोयेगा नहीं तो शरीर को विश्राम कैसे देगा? विश्राम नहीं देगा तो अगले दिन के कार्य कैसे संभालेगा?

उ.–एक साधक की नींद एक योगी की नींद होनी चाहिए। जिस प्रकार एक संन्यासी, एक फकीर सोता है उसके सोने में जागरूकता है, शरीर को विश्राम वह भी करवाता है परन्तु उसके विश्राम में भी होश है। सर्वप्रथम तो वह नींद में रस नहीं लेता और फिर सोते वक्त भी उसके भीतर जागरूकता रहती है। शरीर को विश्राम की आवश्यकता है, मैं मात्र ज्ञाता–द्रष्टा हूं। किसी प्रकार की नींद नहीं, पीड़ा नहीं, बेचैनी नहीं, मैं वही शुद्धात्मा हूं, यानि पूरी रात्रि के दौरान वह अपने सत्य में स्थित रहे तो कर्मों का बंधन नहीं बंधता।

जागरुकतापूर्ण निद्रा कैसे संभव है?

प्र.–परन्तु भगवन्! रात को जब सो जाते हैं तो जागरूकता में कैसे रहें? अगर जागरूकता में रहें तो नींद कैसे आएगी?

उ.–एक साधक जिसके कण–कण, रोएं–रोएं में भेद–विज्ञान है, जिसकी हर श्वास के साथ सत्य व असत्य की भिन्नता का बोध है, जो संसार का हर कार्य शरीर का कर्म जानता–मानता है और मात्र अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए कार्य करता है यानि उस कार्य में रस नहीं लेता, ऐसा साधक जब रात्रि में विश्राम के लिए जाता है तो विश्राम करने से पूर्व उसके भीतर यह भेद–विज्ञान बना रहता है कि देह विश्राम कर रही है, मैं एक शुद्धात्मा हूं। इन्हीं भावों में रात्रि को विश्राम करने के पश्चात् प्रातः उठते ही अपने आराध्य के चरणों में आलोचना–प्रायश्चित्त करता है कि हे प्रभो! रात्रि में प्रमादवश यदि कोई दूषित स्वप्न आया हो तो उसे मैं आपश्री के चरणों में समर्पित करता हूं। इन्हीं भावों के साथ एक साधक एक योगी विश्राम करता है तो उसके विश्राम में प्रमाद नहीं है।

बहिर्दर्शन–अन्तर्दर्शन

प्र.–नये–नये स्थानों को देखने व घूमने के भाव से क्या कर्मों का बंधन होता है?

उ.–हां, निश्चित कर्मों का बंधन होता है, क्योंकि न जाने कब जीव अपनी गति बांध ले। यदि किसी स्थान को देखने की विशेष अभिलाषा है या तीव्र इच्छा है तो यह भी संभव है कि जीव का अगला जन्म उसी स्थान पर हो। बाहर के जगत को देखने की इच्छा-अभिलाषा छोड़ यदि अन्तर्यात्रा की इच्छा-अभिलाषा रखें तो कितने ही कर्मों से मुक्त हो सकते हैं। ऐसा नहीं कि केवल इच्छा रखी जाए। एक साधक का जीवन अन्तर्यात्रा का जीवन है, क्योंकि चार गति, चौरासी लाख जीवयोनि में भ्रमण करते हुए शायद ही कोई ऐसा स्थान होगा जिसे हमने छोड़ा हो। क्योंकि अनादि-काल से विचरते हुए हमने हर स्थान पर भ्रमण किया है, यदि अभी भी बाहर के स्थान घूमने या देखने की इच्छा है तो अपने घर कैसे लौटेंगे? अब तो एक ही इच्छा रहे कि मुझे चार गति का अन्त कर अपने घर सिद्धालय लौटना है।

कर्मक्षय का विज्ञान

प्र.–कर्म-क्षय का विज्ञान क्या है?

उ.–सबसे बड़ा अज्ञान यह है कि व्यक्ति गलती करके भी स्वीकार नहीं करता और कहता है कि संसार में इतना करना ही पड़ता है। जैसे उदाहरण के लिए झूठ तो बोलना ही पड़ता है। इसके स्थान पर गलती हो जाए तो व्यक्ति उसे सहज-भाव से स्वीकार करे और यह भाव रखे कि मेरी कमजोरी है कि मैं सत्यमय जीवन नहीं जी पा रहा हूं। हे प्रभु! मुझे शक्ति दें कि मैं सत्यमय जीवन जी सकूं!

किसी व्यक्ति के अनंत काय कंदमूल खाने का पच्चक्खाण होता है और उसके समक्ष अगर कोई कहता है कि मैं तो कंदमूल के बिना रह ही नहीं सकता, उसके बिना कोई सब्जी बनती है क्या? ऐसा प्रतिपादित करके हम अपने अहंकार का पोषण करते हैं एवं दूसरे प्रत्याख्यान एवं साधना में अन्तराय कर्म का बंधन कर लेते हैं। अतः साधक को यह प्रार्थना करनी चाहिये–जो त्याग करते हैं वे धन्य हैं, हे प्रभु! मेरी भी प्रार्थना है कि मैं इस रसनेन्द्रिय को जीत सकूं। इस प्रकार व्यक्ति कर्म-निर्जरा कर सकता है।

जीव जो भी कर्म करता है उसका उसके शरीर के चारों ओर ऑरा बन जाता है। अक्सर हमारी आत्मा के चारों ओर छः ऑरे बनते हैं। वे ऑरे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग एवं द्वेष के होते हैं। इन ऑरों का रंग कालिष से काला होता है और साधक आत्म-दृष्टि पाने पर आत्मा का ध्यान करते हुए अपने इन कर्मों को अपने आराध्य की शरण में समर्पित कर आत्म-ध्यान में लीन हो जाता है तो ये कर्म क्षय होते हैं, इसकी साधना आत्म-ध्यान शिविरों में शिवाचार्यश्री जी करवाते हैं।

सबसे बड़ा असत्य

प्र.–संसार में सबसे बड़ा असत्य क्या है?

उ.–मैं शरीर हूं।

असत्य का परिणाम

प्र.–मैं शरीर हूं मानकर जीवन-व्यवहार करते हैं, उससे क्या होता है?

उ.–इससे संसार के सभी रिश्ते-नाते-सम्बन्ध सत्य प्रतीत होने लगते हैं।

नित्य

प्र.–संसार में नित्य क्या है?

उ.–आत्मा और परमात्मा नित्य हैं।

आत्म-स्वरूप

प्र.–आत्मा कैसी है?

उ.–आत्मा अरूपी है, अविकारी है, ज्ञाता-द्रष्टा एवं परमानंदी है, स्व-पर प्रकाशक है।

संसार-स्वरूप

प्र.–रूपी संसार का स्वरूप क्या है?

उ.–जितना भी रूपी संसार है वह पुद्गलों का है। पुद्गल बदलने वाले हैं, अनित्य हैं।

सम्यक् दर्शन

प्र.–भगवन्! सम्यक् दर्शन कितने प्रकार का है?

उ.–सम्यक् दर्शन दो प्रकार का है–व्यवहार सम्यक् दर्शन और निश्चय सम्यक् दर्शन।

व्यवहार सम्यक् दर्शन

प्र.–भगवन्! व्यवहार सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं?

उ.–देव, गुरु, धर्म पर श्रद्धा रखना या तत्व पर श्रद्धा रखना।

निश्चय सम्यक् दर्शन

प्र.–भगवन्! निश्चय सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं?

उ.–आत्मभाव में रमण करना, मैं शुद्धात्मा हूं एवं सभी में वही शुद्धात्मा है, इसका सतत अनुभव होना, इसमें जीना, सभी जीवों में उस आत्मा का अनुभव करना निश्चय सम्यक् दर्शन है।

कायोत्सर्ग

प्र.–भगवन्! कायोत्सर्ग किसे कहते हैं?

उ.–शरीर अलग है व आत्मा अलग है यह भेद करना कायोत्सर्ग है। 'मैं शरीर नहीं हूं' ध्यान में जाकर इस परम सत्य का अनुभव करना सबसे बड़ा अंतरंग तप है। इसमें सबसे ज्यादा कर्म-निर्जरा होती है।

निन्दा का कारण

प्र.–भगवन्! व्यक्ति निन्दा कब करता है?

उ.–व्यक्ति जब अपने को दूसरे से श्रेष्ठ समझता है तब वह निन्दा करता है।

सबसे बड़ा सत्य

प्र.–भगवन्! सबसे बड़ा सत्य क्या है?

उ.–मैं शुद्धात्मा हूं, हर जीव में वही शुद्धात्मा है। इस जगत में कोई भी छोटा या बड़ा नहीं, सभी समान हैं।

अनित्य

प्र.–भगवन्! अनित्य क्या है?

उ.–संसार अनित्य है। जो समाप्त हो जाएगा, नष्ट हो जाएगा, वह सभी अनित्य संसार है। पुद्गल की सभी पर्याय बदल रही हैं, वे अनित्य हैं।

नित्य

प्र.–भगवन्! नित्य क्या है?

उ.–आत्मा नित्य है, थी व रहेगी। आत्मार्थी साधक को नित्य आत्मा का ध्यान करना चाहिए।

साधना

प्र.–भरत क्षेत्र में साधक कैसे साधना करे?

उ.–भरत क्षेत्र में साधक पुण्य-पाप में अटक गए हैं, उन्हें शुद्धात्मा की साधना करनी चाहिए।

साधना-विधि

प्र.–वर्तमानकाल में नये साधक को कैसे साधना करायें?

उ.–पहले श्वास पर ध्यान कराओ, फिर सोऽहं का ध्यान कराओ, फिर आगे की गहरी साधना कराओ।

पाठ कौन-सा करें?

प्र.–पाठ करना चाहें तो कौन-सा पाठ करें?

उ.–पाठ करना है तो सिर्फ नवकार मंत्र, लोगस्स एवं नमोत्थुणं का पाठ करो। अथवा शुद्धात्मा का ध्यान करो। शुद्धात्मा के ध्यान से निर्जरा अधिक है, पाठ में पुण्य अधिक है।

निर्जरा-स्वरूप

प्र.–निर्जरा किसे कहते हैं?

उ.–कर्मों को क्षय करने को निर्जरा कहते हैं। मनुष्य जीवन कर्म-निर्जरा के लिए मिला है। पुण्य और पाप से कर्म का बंध होता है। सोऽहं के ध्यान से कर्मों की निर्जरा होती है।

सोऽहं-स्वरूप

प्र.–सोऽहं किसे कहते हैं?

उ.–'सो' अर्थात् वह सिद्ध भगवान्।

'अहं' अर्थात् मैं शुद्ध आत्मा हूं। दोनों एक समान हैं।

'सो' अर्थात् वे नरक और निगोद के जीव और मैं शुद्धात्मा की दृष्टि से एक समान हैं।

'सो' अर्थात् वे तिर्यंच के सभी जीव और मैं शुद्धात्मा एक समान हैं।

'सो' अर्थात् मनुष्य गति के सभी मनुष्य और मैं एक समान हैं।

'सो' अर्थात् वे छब्बीस देवलोकों के देव और मैं एक समान हैं।

'सो' अर्थात् वे अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और मैं एक समान हैं।

छः दिशाओं में घूमने वाले जीव और मैं एक ही समान हैं। यह है आत्म-दृष्टि। इस प्रकार श्वास के साथ सोऽहं का ध्यान करने से सर्वाधिक निर्जरा होती है। समस्त वीतरागों का यही मार्ग है।

साधना को कैसे फैलाएं?

प्र.–आज तक साधना के बारे में हमें किसी ने नहीं बताया, इस साधना को हम कैसे फैलायें?

उ.–मनुष्यों की आकांक्षाएं बढ़ गई हैं। वे अपनी आकांक्षा-पूर्ति के लिए साधु-संतों के पास आते हैं। संतों ने तात्कालिक दुःख को सुख में बदलने के लिए उपाय रूप में मंत्र, पूजा, पाठ आदि बताये। परिणामस्वरूप भरतक्षेत्र के लोग अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करने के लिए ही धर्म का उपयोग करने लगे और शुद्ध साधना लुप्तप्रायः हो गई। शाश्वत सुख का लक्ष्य वे भूल गये। आज पुनः वीतराग-मार्ग में जन-जन को स्थापित करने के लिए उन्हें अपने घर लौटने के लिए उनका लक्ष्य निर्धारित करने की प्रेरणा दो और उन्हें ध्यान साधना कराओ।

वीतरागता का विस्तार

प्र.–वर्तमान-काल में भरतक्षेत्र में संघ का किस प्रकार से संचालन करें जिससे चतुर्विध संघ के साधक वीतराग-भाव में आगे बढ़ सकें?

उ.–सभी को अपने स्वरूप का बोध कराओ। शरीर अलग है, आत्मा अलग है, यह भेद-ज्ञान की साधना करवाओ। प्रारंभ में श्वास पर ध्यान करें, बाद में सोऽहं के द्वारा ध्यान करें। 'सो' में श्वास लें और 'हं' में श्वास छोड़ दें। इस प्रकार थोड़ी देर साधना करने के पश्चात् अपने स्वरूप में स्थापित हो जाएं। जब-जब भी मन भटक जाए, विचार अधिक आएं तो पुनः 'सो' के साथ श्वास लें और 'हं' के साथ श्वास छोड़ें। सभी को उनके लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाओ। छोटी-छोटी बातों पर ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा और व्यर्थ की चर्चाओं से उन्हें बाहर निकालो तो वीतराग-मार्ग में साधक आगे बढ़ सकेंगे।

लक्ष्य-प्राप्ति की विधि

प्र.–साधु-जीवन में हम कैसे व्यवहार करें जिससे हम कर्म-बंधन से बच सकें और निश्चय में अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकें?

उ.–हर गति में हमने व्यवहार धर्म निभाया और उस व्यवहार को निभाते-निभाते अनेक प्रकार के कर्मों का बंधन किया। यहां पर भी व्यवहार-धर्म के नाम पर नवीन कर्मों का बंधन मत करो। आने वाले श्रावक से व्यर्थ की बातें और चर्चा मत करो। इससे तुम भी अपने साधु-धर्म से गिरते हो और श्रावक को भी गिराते हो। आने वाले श्रावक को पहले श्वास पर ध्यान कराओ, उसके बाद उसे सोऽहं की साधना कराते हुए अपने घर सिद्धालय लौटने की प्रेरणा दो।

समता है उपाय

प्र.–साधु-साध्वी वर्ग तो धर्म की प्रेरणा-उपदेश देकर बहुत कर्मों की निर्जरा कर लेते हैं तो क्या मुक्ति के लिए साधु बनना ही आवश्यक है? कृपया प्रकाश डालें!

उ.–कई साधु ऐसे हैं जो श्रावकों से बहुत ऊंचे हैं और वे मुक्ति की ओर बढ़ रहे हैं। कई ऐसे हैं जो साधु का वेश पहनकर घमण्ड कर रहे हैं और

नीचे गिर रहे हैं। कई श्रावक ऐसे हैं जो श्रावक-धर्म का पालन करते हुए सेवा करके निर्जरा कर रहे हैं। वस्तुतः जो भी समता धर्म को स्वीकार करता है वही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। केवल वेश-परिवर्तन पर्याप्त नहीं है।

इच्छा-निरोध

प्र.–इच्छाओं का निरोध करना धर्म है क्या?

उ.–समता पूर्वक इच्छाओं का निरोध करना ही धर्म है। समता भाव के विकास के बिना इच्छा-निरोध का प्रयास सफल न हो सकेगा। समता भाव को विकसित करें, इच्छाएं स्वतः शान्त हो जाएंगी।

शुद्धात्मा का ध्यान

प्र.–लोगस्स का पाठ करें, नमोत्थुणं का पाठ करें या भक्तामर का पाठ करें?

उ.–लोगस्स, नमोत्थुणं एवं भक्तामर के पाठ के साथ-साथ शुद्धात्मा का ध्यान भी करो। शुद्धात्मा के ध्यान से आप स्वयं भगवान् बनने की साधना करते हैं, अतः यह उत्तम है। शुद्धात्मा का ध्यान करें, भेद-विज्ञान करें कि मैं शरीर नहीं हूं, शुद्धात्मा हूं।

संकल्प

प्र.–हम संकल्प तो करते हैं पर संकल्प क्यों टूट जाता है? कृपया प्रकाश डालें!

उ.–तुम्हारा संकल्प अभी मजबूत नहीं हुआ। संकल्प तो वह शक्ति है जो टूटती नहीं अर्थात् तुम्हें संकल्प करना नहीं आया। संकल्प तुम करो शक्ति तुम्हें तुम्हारी श्रद्धा देगी। संकल्प करने वालों की परीक्षा अवश्य होती है, उस परीक्षा में समभाव से पास होना ही कसौटी है। भगवान् महावीर ने समता में रहने का संकल्प किया। उनके कानों में कीलें ठोके गये लेकिन भगवान् शांत रहे तो निर्जरा हो गयी। संकल्प करके अपनी श्रद्धा की शरण में चले जाओ, उसको पूर्ण करने की शक्ति आपके भीतर से ही प्रकट हो जाएगी।

भक्ति का स्वरूप

प्र.–भक्ति का सरलतम उपाय क्या है?

उ.–गुरु-समर्पण एवं आत्म-समर्पण। गुरु-समर्पण–गुरु की आज्ञा में रहो, उनकी सेवा करते हुए उनके इंगित-इशारों को समझो, उनकी शरण में रहो या फिर अपनी आत्मा की शरण में आ जाओ। आत्म-समर्पण साधना से आता है।

कर्म-निर्जरा

प्र.–कर्म-निर्जरा किससे ज्यादा होती है?

उ.–समभाव से। हजारों वर्षों की तपस्या एक तरफ हो और एक क्षण की समता एक तरफ हो तो समता का पलड़ा भारी होगा।

पुण्य

प्र.–पुण्य क्या है?

उ.–पुण्य सोना है। सोने की जैसे कीमत है वैसे ही पुण्य की भी कीमत है। लेकिन वह भी एक कर्म ही है।

निर्जरा से मुक्ति

प्र.–फिर हमें पुण्य करने को क्यों कहा जाता है?

उ.–वीतराग-मार्ग में पुण्य करने को नहीं कहा जाता, यह अन्य मताव-लम्बियों द्वारा कहा जाता है। वीतराग-मार्ग तो शुद्धात्मा का ध्यान करने को कहता है। उससे निर्जरा होती है और निर्जरा से मुक्ति होती है।

पुण्य : आवश्यक-अनावश्यक

प्र.–पुण्य करना चाहिए या नहीं?

उ.–पुण्य पाप को बैलेन्स करने के लिए ठीक है। पुण्य नहीं करोगे तो पाप बढ़ जाएंगे। अत: बैलेंस करने के लिए ठीक है। किसी को पानी पिलाते समय 'मैंने पानी पिलाया' ऐसे भाव रखोगे तो पुण्य होगा और करुणापूर्ण चित्त से पानी पिलाओगे तो निर्जरा होगी। साधक का लक्ष्य निर्जरा का है।

महापाप है आत्महत्या

प्र.–कोई व्यक्ति परिस्थितियों से घबराकर आत्महत्या के बारे में सोचता है तब क्या होता है?

उ.–परिस्थितियों से घबराकर जीव आत्म-हत्या के बारे में सोचता है तो अनन्त जन्म बढ़ा लेता है, अतः कभी भी परिस्थितियों से घबराकर आत्महत्या की मत सोचो, ऐसा हो गया तो आलोचना कर, प्रायश्चित्त कर ध्यान से आत्म-शुद्धि करो अन्यथा जीव बहुत कर्म बढ़ा लेता है।

साम्य योग

प्र.–किन्हीं को साधना करवाते हैं और वे करवाने वाले को ही परेशान करते हैं तब मन में प्रश्न उठता है कि मैंने इनको क्यों साधना करवाई, नहीं करवाते तो अच्छा था, ऐसा सोचने से क्या होता है?

उ.–ऐसा सोचने से तुम्हारा अहंकार बढ़ता है व नवीन कर्मों का बंधन होता है। उस जीव ने परेशान किया, वह तो तुम्हारे कर्म थे इसलिए तुम्हें ऐसा लगा। तुम समताभाव रखोगे और सोचोगे कि भगवान् ने मुझे सेवा का अवसर दिया तो निर्जरा होगी।

धर्म-चिन्ता?

प्र.–चिन्ता किसकी करनी चाहिए?

उ.–मन-वचन-काया की चिन्ता से ज्यादा आत्मा की चिन्ता करनी चाहिए। लोग शरीर का वजन बढ़ गया इसकी ज्यादा चिन्ता करते हैं लेकिन आत्मा कितनी भारी हो रही है उसकी चिन्ता नहीं करते। आत्मा को निर्भार करने की चिन्ता ही धर्म-चिन्ता है। उसके लिए शुद्धात्मा का ध्यान अमोघ साधन है।

अहिंसा का स्वरूप

प्र.–अहिंसा क्या है?

उ.–अपनी आत्मा के प्रति सतत जागरूक रहना अहिंसा है। अपने चैतन्य से प्रेम करो! स्वयं से घृणा न करें। गलती हो जाए तो प्रामाणिकता पूर्वक

प्रायश्चित्त कर लो। स्वयं से प्रेम करोगे तभी आत्म-साक्षात्कार की घटना घटेगी। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अपनी आत्मा के समान ही समष्टि के प्राणी हैं। तुम्हें सुख प्रिय है, वैसे ही प्राणीमात्र को सुख प्रिय है। तुम्हें दुख अप्रिय है, वैसे ही प्राणीमात्र को भी दुख अप्रिय है। सुख बांटना और दुःखों को दूर करने हेतु श्रमशील रहना ही अहिंसा है।

साधना है प्रमुख

प्र.–तप करना चाहिए या साधना करनी चाहिए?

उ.–शारीरिक क्षमता है तो तप करो, पर साथ में साधना भी करो। अगर तप करने से साधना छूट जाती हो तो साधना को प्राथमिकता दो। कोरा तप मुक्ति नहीं देता। समतापूर्वक की हुई साधना एवं समतापूर्वक किया हुआ तप निर्जरा का मूल कारण है।

जाणिज्जइ चिंतिज्जइ...

प्र.–जानते भी हैं और समझते भी हैं फिर भी कर्म-बंधन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में हम क्या करें?

उ.–ऐसी परिस्थिति में अपने संकल्प को सुदृढ़ करो। तुम्हारा संकल्प कमजोर हो जाता है तो कर्म-बन्धन हो जाता है।

संकल्प की सीढ़ियां

प्र.–संकल्प क्या है? संकल्प कैसे करें?

उ.–संकल्प की पांच सीढ़ियां हैं–

1. **श्रद्धा**–श्रद्धा हृदय से आती है। आपके खून के कतरे-कतरे में अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए।
2. **प्रयास**–जो संकल्प किया है उसके लिए पूर्णरूप से मेहनत, पुरुषार्थ करो।
3. **स्मृति**–जो संकल्प किया है वह तुम्हें याद रहना चाहिए, उससे तुम्हारे जीवन में जागरूकता आएगी।

4. **एकाग्रता**–अपने संकल्प पर अपने मन को एकाग्र करो। जैसे अर्जुन को आंख ही दिखाई दी, वैसी एकाग्रता।

5. **विवेक**–हमारी बुद्धि विवेक से युक्त हो। होशपूर्वक विवेक से कार्य करें तो संकल्प अवश्य पूरा होता है।

धर्म–अधर्म का प्रभाव

प्र.–भगवान् से किसी ने पूछा–प्रभो! कुछ लोगों को देखने मात्र से मन उनकी ओर आकर्षित होता है, उनके साथ बैठने, बात करने का मन करता है और कुछ लोगों को देखने मात्र से ही उनसे दूर जाने का मन होता है, उनसे बात करने को मन नहीं करता, ऐसा किस कारण से होता है?

उ.–भगवान् ने फरमाया–जिन लोगों ने पूर्वभव में अहिंसा, संयम और तप की आराधना की है तथा उस आराधना से जो बहुत हल्के हो गये हैं वे शरीर से भी सुन्दर होते हैं, उनका मन भी सुन्दर होता है, इसी कारण हमारा मन उनकी ओर आकर्षित होता है। इसके विपरीत जिन लोगों ने पिछले जन्मों में धर्म का पालन नहीं किया, पाप कर्म करके आत्मा को भारी बनाया है उनका रूप भी कुरूप होता है और उनकी आत्मा भी भारी होती है। इस कारण से सहज ही हम उनसे दूर चले जाते हैं और उनके पास बैठने का हमारा मन नहीं होता। अत: इस भव में अहिंसा, संयम, तप की उच्चतम आराधना करो जिससे आपकी आत्मा पवित्र, निर्मल और शुद्ध बनती चली जाएगी और आप सभी तरफ लोकप्रिय और रूपवान बन जाआगे।

सम्यक् दृष्टि जीव

प्र.–क्या सम्यक्-दृष्टि जीव भी नरक में जा सकता है?

उ.–हां, सम्यक् दृष्टि जीव भी नरक में जा सकता है परन्तु नरक में भी वह सुखी रहता है। वहां भी भेदज्ञान की साधना करके कर्मों की निर्जरा करता है। उसके बाद मनुष्य-जन्म के द्वारा ध्यान, समाधि और भेदज्ञान की साधना से मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। अत: प्रत्येक साधक को चाहे कैसी भी परिस्थिति हो साधना निरन्तर चालू रखनी चाहिए। अगर निकाचित कर्म का उदय है तो जीव अधोगति में भी जा सकता है लेकिन वहां पर भी भेदज्ञान की साधना होने से कर्म-निर्जरा कर जीव मुक्ति की ओर बढ़ सकता है।

देवत्व की उपलब्धियां

प्र.–जीव देव कैसे बनता है? क्या देव साधना कर सकते हैं?

उ.–जीव पुण्य के बल से देव बनता है और देव बनकर जीव उस पुण्य कर्म की तो निर्जरा करता है लेकिन वह साधना नहीं कर पाता, क्योंकि साधना करके जो निर्जरा करने का अवसर है वह केवल मात्र मनुष्य को ही है। अत: मनुष्य-जीवन जिन्हें भी मिला है वे इसका पूरा उपयोग करें। देव भी अपने देवभव की निर्जरा करके पुन: मनुष्य बन सकता है अत: वहां से साधना कर मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

क्रोध

प्र.–हम क्रोध नहीं करना चाहते हैं फिर भी हो जाता है। तब हम उसे क्या मानें?

उ.–न चाहते हुए भी क्रोध हो जाए तो समझो वह निश्चित और व्यवस्थित था, उसे स्वीकार करो। इसका मतलब यह भी नहीं है कि इसकी आड़ में आप क्रोध करते चले जाओ। जागरूकता पूरी रखनी है, फिर भी हो जाए तो निश्चित समझकर स्वीकार कर लो।

भीतर लौटें

प्र.–ध्यान के अन्दर कहा जाता है कि अपने भीतर गहरे जाओ, इसका क्या अर्थ है?

उ.–अपने भीतर गहरे-गहरे जाने का अर्थ है बाहर के सभी संबंधों को छोड़ देना। शरीर-संबंधी सारी पकड़ को छोड़ देना और अपने स्वरूप में स्थित हो जाना। जितनी शरीर की पकड़ छूटेगी उतना ही आप आत्म-स्वरूप में स्थित होंगे। मैं शुद्धात्मा हूं यह बोध होता जाएगा।

समाधि : प्रवेश विधि

प्र.–समाधि में कैसे प्रवेश करें?

उ.–समाधि के लिए चार बातें आवश्यक हैं–

1. पद्मासन या कमलासन में स्थिर होकर बैठना। किसी प्रकार का सहारा नहीं लेना।

2. हाथों की मुद्रा–बाएं हाथ पर दायां हाथ, दोनों अंगूठे एक-दूसरे को स्पर्श करते हुए, कायोत्सर्ग मुद्रा में रहेंगे। चाहे कुछ भी हो जाए हाथ नहीं हिलेंगे।
3. आंखों के पीछे गहन काले अंधकार को देखते चले जाएं। निर्विचार, निर्विकल्प अवस्था में रहें। थोड़ी देर इसी स्थिति में रहें।
4. उसके पश्चात् श्वास के साथ सहज-भाव से सोऽहं की ध्वनि के साथ रहें। इस प्रकार से एक बैठक 48 मिनिट की होनी चाहिए। इससे समाधि की गहराई में आप पहुंच सकते हैं। बाकी साधना गुरुगम है।

प्रमाद का स्वरूप

प्र.–प्रमाद किसे कहते हैं?

उ.–प्रमाद अर्थात् आलस्य, निद्रा, विकथा में समय खोना। नींद में जाना और ऊपर से कहना मुझे बहुत अच्छी नींद आई। निद्रा स्वयं प्रमाद है और उसे और अच्छा मानना यह अज्ञान है। सोता कौन है? शरीर। लेकिन हम मानते हैं कि मैं सोया। इस अज्ञान से बहुत सारे कर्मों का बंधन होता है। अतः शरीर ने विश्राम किया, लेकिन आत्मा जागरूकता में रहे। इस प्रकार जागरूकता में हर पल रहना प्रमाद से छूटने का सरलतम उपाय है। ध्यान साधना से प्रमाद कम होता है।

नमस्कार क्यों?

प्र.–नमस्कार क्यों करना चाहिए?

उ.–नमन से समर्पण में जीना आता है। नमन से जीव अहंकार से मुक्त निर-अहंकारी होता है। नमन में अपने परमात्मा के गुणों का गुणगान होता है। नमन में प्रार्थना है। प्रार्थना में जुड़ी है अन्तर् हृदय की भावनाएं। नमन से जीव सर्वश्रेष्ठ बनता है। नमन में झुकाव है। झुके हुए को फल है। नमन में वंदना है, अर्चना है, उपासना है, पूजा है। नमन में बड़े और छोटे में कोई भेद नहीं है। नमन में आत्मा में छिपे गुणों का गुणगान है। नमन भेद से अभेद की साधना है। नमन में समय की मर्यादा नहीं है। नमन की कोई विशिष्ट और सर्वमान्य विधि नहीं है।

दिन की शुरुआत

प्र.–दिन की शुरुआत कैसे हो?

उ.–दिन की शुरुआत नमन, प्रार्थना, नमस्कार मंत्र से की जाए। नमन से अनंत महान् आत्माओं का आशीर्वाद प्राप्त होता है। नमस्कार मंत्र को होशपूर्वक पढ़ा जाए। मात्र मुंह से रटे चले जाने से पुण्य का उपार्जन निश्चित होगा, परन्तु हमारी साधना पाप और पुण्य से परे निर्जरा की साधना है। क्योंकि हमारा लक्ष्य चारों गति से पार पंचम गति की ओर बढ़ने का है। पंचमगति मोक्ष है। वही हमारा घर है। वही हमारा लक्ष्य है। वही हमारी मंजिल है। नवकार मंत्र का जाप जीवन में आने वाले सुख और दु:ख को समभाव से सहन करने की क्षमता देता है। हम यह नहीं कह सकते कि जीवन में दु:ख आये ही नहीं, क्योंकि जहां सुख है वहां दु:ख निश्चित है। परन्तु हम ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं कि हे प्रभु महावीर! जैसे आपने हर परिस्थिति को समता से, मौन से स्वीकार किया वही समता हमारे भीतर आए ऐसा आशीर्वाद प्रदान करें। अरिहंत भगवान् को नमन करते ही हमारे राग व द्वेष के बन्धन टूटने लगेंगे परन्तु यदि वह नमन हृदय के भावों से किया गया हो। सिद्ध भगवान् के चरणों में की गई वन्दना आपको भी सिद्ध बना सकती है। आप भी अपने आठों कर्मों को क्षय कर सकते हैं।

पंचम आरे में मोक्ष

प्र.–पंचम आरे में भरत क्षेत्र में मोक्ष है या नहीं?

उ.–पंचम आरे में भरत क्षेत्र में मोक्ष नहीं है यह तीर्थंकर-भगवन्तों की वाणी है। परन्तु साथ ही उन्होंने ऐसा भी फरमाया कि यहां पर हम निन्यानवे प्रतिशत तैयारी कर सकते हैं और फिर यहां से महाविदेह क्षेत्र की ओर बढ़ते हुए पंचम गति को अवश्य पा सकते हैं।

समय की मर्यादा

प्र.–क्या वीतराग साधना समय की मर्यादाओं में बंधी है?

उ.–वीतराग-साधना में समय की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर-भगवंतों की साधना भेद-ज्ञान की साधना है और भेद-ज्ञान आप अपनी हर श्वास के साथ कर सकते हैं। आप भेदज्ञान की साधना से आश्रवों का निरोध

कर संवर व निर्जरा की ओर बढ़ सकते हैं। ये साधना भोजन करते, विश्राम करते, बात करते, विहार करते हुए भी की जा सकती है। अतः वीतराग साधना समय की सीमाओं से नहीं जुड़ी है।

सामायिक का प्रारंभ

प्र.–सामायिक का प्रारंभ कैसे करें?

उ.–सामायिक का प्रारंभ प्रार्थना से होता है। प्रार्थना अरिहंत, गुरु या इष्ट के चरणों में हो। हे आराध्य! आपकी आज्ञा से मैं सामायिक में प्रवेश कर रहा हूं। मुझे इतनी शक्ति प्रदान करें कि मैं मन, वचन, काया को एकाग्र रखते हुए अपनी सामायिक को पूर्ण कर सकूं, मेरा शरीर साथ दे, आस-पास का वातावरण, परिस्थितियां मेरा साथ दें। भीतर आने वाले विचार बाधक न बनें। सामायिक के बत्तीस दोषों से मुक्त रहता हुआ अपनी ये साधना पूर्ण करूं।

सामायिक की पूर्णाहुति

प्र.–सामायिक की पूर्णाहुति कैसे करें?

उ.–सामायिक की पूर्णाहुति कृतज्ञता से करें। यथा–हे परमात्मा! तुम्हारी कृपा से ही मैं साधना कर पाया हूं। जहां मैं बाहर के जगत में कदम रख रहा हूं वहां मुझे हर प्रकार के कषाय से दूर रखना, किसी को अच्छा या बुरा न मानूं ऐसी मुझे दृष्टि देना। जिस प्रकार आपने मुझ पर कृपा बरसायी उसी प्रकार बरसाते रहना। आपकी कृपा के बिना मेरी साधना अधूरी है।

महाविदेह क्षेत्र

प्र.–महाविदेह क्षेत्र क्या है?

उ.–पांच भरत, पांच महाविदेह और पांच ऐरावत ये पन्द्रह कर्मभूमियां हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों में आरे का प्रभाव है परन्तु महाविदेह क्षेत्र में सदैव चतुर्थ आरा रहता है। वहां सदैव तीर्थंकर विचरते हैं, वहां मोक्ष का मार्ग सदैव खुला है। वहां काल का प्रभाव नहीं है।

निर्जरा किससे?

प्र.–स्वाध्याय, सेवा, पाठ से कर्म-निर्जरा है या ध्यान व कायोत्सर्ग से?

उ.–आत्म-दृष्टि से शुद्धात्म स्वरूप में रहकर किया हुआ हर अनुष्ठान निर्जरा करता है। किन्तु मैंने स्वाध्याय किया, ज्ञान प्राप्त कर अहं भाव रखा, तो पुण्य का

बन्ध होगा, माला फेरकर अथवा सेवा करके यह भाव रखा कि मैंने माला फेरी, मैंने सेवा की, तो पुण्य का बंधन होगा, निर्जरा नहीं। ध्यान और कायोत्सर्ग से हम अहंकार में नहीं आते। बदले में कोई अपेक्षा नहीं रहती। अतः ध्यान और कायोत्सर्ग से अहंकार का विसर्जन होता है जिससे आत्म-शुद्धि होती है अतः उसमें निर्जरा अधिक होती है और उससे जीव मोक्ष की ओर आगे बढ़ता है।

ओंकार

प्र.–नवकार मंत्र के आगे ॐ क्यों लगाते हैं?

उ.–ओंकार ऐसी शुद्ध ध्वनि है जिससे सकारात्मक परमाणु फैलते हैं। ॐ मांगलिक है, उसकी तरंगों से वातावरण शुद्ध हो जाता है। ॐ की ध्वनि से मंत्र का प्रभाव बढ़ जाता है।

बंध / मुक्ति

प्र.–कर्म का बंधन कैसे होता है?

उ.–स्वयं को शरीर मानकर संसार में रहकर खाना, पीना, सोना सब करने पड़ते हैं ये मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व में सतत कर्म का बंधन होता है।

प्र.–किसका कर्म बंधन नहीं होता?

उ.–मैं आत्मा को मानने वाला सम्यक् दृष्टि जीव शरीर को विश्राम ही देता है, खाता, पीता, चलता है एवं सभी कर्म करता है। वह सतत भेद-विज्ञान करता हुआ सत्य में जीता हुआ निर्जरा करता है।

आत्मा का सतत चिन्तन

प्र.–ध्यान की गहराई में कैसे जाएं?

उ.–मैं आत्मा को पुष्ट करते हुए आत्म-गुणों का चिन्तन करते हुए अपने भीतर गहरे चले जाएं, फिर सतत भेद-ज्ञान करते हुए शांति में बने रहने से मैं आत्मा ही हूँ का सतत चिन्तन करते रहने से ध्यान में गहराई आती है और कर्मों की निर्जरा होती है।

प्र.–आत्मा व सिद्धालय के बीच में क्या बाधक है?

उ.–आत्मा व सिद्धालय के बीच अनादि के आठ कर्म बाधक हैं।

प्र.–हमारा पुरुषार्थ एवं लक्ष्य क्या है?

उ.–सतत भेद-ज्ञान से कर्म-निर्जरा करते हुए अपने घर सिद्धालय जाना है यही हमारा लक्ष्य है, यही हमारी मंजिल है। इसे पाने का सतत पुरुषार्थ ही हमें अपने घर सिद्धालय लौटाएगा।

प्र.–मोक्ष जाने के लिए क्या आवश्यक है?

उ.–मैं आत्मा ज्ञाताद्रष्टा स्वभाव वाला आज तक इस जन्म में, पिछले जन्मों में, अनन्त भवों में इस देह ने जो भी कर्म किए, चाहे वो कर्म अशुभ थे या शुभ थे, सभी कर्म इस शरीर ने किए, उन्हें शरीर के मानता हुआ, स्वयं से भिन्न, स्वयं से जुदा करता हूँ। मैं निज आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा हूँ, ज्ञाता-द्रष्टा था और ज्ञाता-द्रष्टा ही रहने वाला हूँ।

मैं आत्मा हूँ, यह मानकर चलो। अगर मोक्ष जाना है तो मैं आत्मा हूँ, इस भाव में ही जीना होगा, इस पर ही श्रद्धा करनी होगी, अन्यथा कभी मोक्ष हो नहीं सकता।

अभवी कौन?

प्र.–अभवी किसे कहते हैं?

उ.–'मैं शरीर ही हूँ' यही श्रद्धा रहेगी तो समझना आप अभवी हो। फिर कभी मोक्ष जा नहीं सकते।

प्र.–मुक्ति का सच्चा मार्ग क्या है?

उ.–"मैं आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा भाव वाला हूँ" इस भेद-ज्ञान में सतत रमण, आत्म-चिन्तन ही मुक्ति का सच्चा मार्ग है, इसमें अनन्त निर्जरा है।

देह-तल / आत्म-तल

प्र.–प्रभो! आप सत्य कहते हैं कि ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रमण करो परन्तु फिर भी कभी-कभी विचारों में ऐसे उलझ जाते हैं कि ज्ञाता-द्रष्टा भाव का पता ही नहीं लगता?

उ.–जब विचारों से बाहर आओ तो ज्ञाता-द्रष्टा में देखो। इस शरीर को कितने विचार आए। ये सारे विचार इस देह के थे। मैं तो ज्ञाता-द्रष्टा हूँ। अभी बुद्धि के स्तर पर करना होगा। धीरे-धीरे सहज में हो जाएगा।

प्र.–प्रभो! ज्ञाता-द्रष्टा भाव का अर्थ क्या है?

उ.–शरीर और आत्मा ये दो अलग-अलग तत्व हैं। शरीर एक दिन मिट जाएगा। शरीर का कोई अस्तित्व नहीं है आत्मा के बिना। आत्मा और शरीर इन दोनों को जोड़ा है आपकी श्वासों ने। शरीर और आत्मा के मध्य श्वास एक सेतु है। कर्म शरीर करता है, आत्मा जानती है, देखती है। दोनों को भिन्न जानो।

प्र.–प्रभो! ज्ञाता-द्रष्टा भाव से कैसे कर्मों की निर्जरा होती है?

उ.–एक सामान्य जीव 24 घंटे किसी न किसी विचार में उलझा रहता है। बिना विचार से उसका एक क्षण भी नहीं बितता। या आगे का विचार या पीछे का विचार। बहुत ही कम ऐसे जीव हैं जो वर्तमान में जीते हैं। प्रतिपल, प्रतिक्षण यदि इन विचारों में उलझते रहेंगे तो असंख्यात कर्म का बंधन है।

जब आप उस कर्म के बंधन से हटकर ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रहते हो, मैं मात्र जानने वाला हूँ और देखने वाला हूँ, तब आापको कर्म नहीं लगता। दूसरी तरह से जब आप 'सोऽहं' का स्मरण करते हैं, ''जैसा तू है वैसा ही मैं हूँ'' तब आप के भीतर से ऊँचा, नीचा, छोटा, बड़ा ये भाव पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं। इससे भी आपके कर्मों की निर्जरा होती है। इसलिए ज्ञाता-द्रष्टा, सोऽहं, शुद्धात्म भाव, ये सारे कर्म निर्जरा के अनमोल साधन हैं। मात्र एक ज्ञाता-द्रष्टा भाव से अनन्त भवि आत्माएं अपने घर सिद्धालय लौट गई हैं।

बंध-निर्जरा

प्र.–उदय कर्मवश कषाय आ रहा है, ऐसे समय में 'मैं आत्मा हूँ' का चिन्तन चल रहा है तो कर्म-बंधन अधिक है या निर्जरा अधिक है?

उ.–पूर्व में किए हुए कर्म जब उदय में आते हैं तब क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, आसक्ति, विषय, वासना आदि आएंगे, उनका जब उदय हो तब भीतर यह भाव रहे कि मैं आत्मा हूँ और मेरे शरीर को यह उदय हो रहा है, ऐसा चिन्तन कर्म उदय से सम्पूर्ण भोगने तक रहे, तब निर्जरा अधिक है एवं बंधन सूक्ष्म है।

सच्ची साधना

प्र.–हमारी साधना 24 घंटे की कैसे है?

उ.–जिस दिन दीक्षा ग्रहण की थी तब चौबीस घंटे की साधना का संकल्प लिया था। माला, जाप, स्तोत्र, पाठ आदि सतत 24 घंटे नहीं कर सकते, किन्तु भेद-विज्ञान सतत 24 घंटे कर सकते हैं। सतत 'मैं आत्मा हूँ' में रहना, आत्मा और शरीर की भिन्नता का अहसास करना, यही हमारी सच्ची साधना है।

आत्मानुभूति

प्र.–'मैं आत्मा हूँ' के चिन्तन की गहराई कैसे प्राप्त हो?

उ.–चिन्तन का पुरुषार्थ तो हर साधक का स्वयं के लिए है। मैं असत्य में सत्य हूँ, विनाशी में अविनाशी हूँ, अजर, अमर, शुद्ध, बुद्ध, परम आनन्द, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, शांति का स्रोत हूँ, ऐसा चिन्तन सतत बना रहे। चिन्तन करते-करते आत्मानुभूति होगी, चिन्तन में भी निर्जरा है और गहराई में भी निर्जरा है। ये साधना आपकी स्वयं की साधना है। आपकी हर क्षण की साधना, आपकी स्वयं की निज पूंजी है। इस पूंजी को जितना बढ़ाओगे उतनी ही शीघ्रता से कर्ममैल हटते चले जाएंगे।

प्र.–प्रभो! 'मैं आत्मा हूँ' का चिन्तन या आत्म-रमण बीच-बीच में भूल जाते हैं तो क्या करें?

उ.–आत्म-रमण, आत्म-चिन्तन जब भूल जाएं तो उन भूले हुए समस्त क्षणों के लिए आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करो। ऐसा करने से कर्म तीव्र अवस्था में आत्मा को छू नहीं पाएंगे और उन क्षणों में जो कर्म बंधन हुआ है उसकी निर्जरा भी होगी।

संसार-भ्रमण का कारण

प्र.–हे परमात्मा! मेरा संसार-भ्रमण कैसे बढ़ा?

उ.–संसार-भ्रमण का मूल कारण मिथ्यात्व है। आज तक आपकी दृष्टि सम्यक् नहीं हुई। जब तक आप मिथ्या-दृष्टि रहे हर पल हर क्षण कर्म-बंधन जाने, अनजाने होता रहा और जब तक दृष्टि मिथ्या है तो

कर्म-बन्धन होता ही रहेगा। मिथ्या-दृष्टि छोड़, सम्यक् दृष्टि अपनाओ। इस भव में जब तक 'मैं आत्मा हूँ' यह बोध न हुआ तब तक नवीन कर्म बांधे। तप, दान, माला, शास्त्र, स्तोत्र जो भी धर्म या पुण्य के कार्य किए सबमें कर्म बांधा। अपनी दृष्टि को सम्यक् दृष्टि कर लो। मैं आत्मा था, हूँ और रहूँगा। पशु बना, नरक में गया, स्वर्ग का इन्द्र बना, सब जगह आत्मा था, अब भी आत्मा हूँ और आगे भी आत्मा ही रहूंगा। अकेला था, अकेला हूँ और अकेला ही रहूँगा, जब तक ये भावना भीतर नहीं आएगी तब तक संसार-भ्रमण बढ़ता रहेगा।

क्रोध का कारण

प्र.–न चाहने पर भी व्यक्ति क्रोध क्यों करता है?

उ.–जब वह अपनी रक्षा करना चाहता है या उसकी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती तब वह क्रोध करता है। जब शरीर के अहंकार को ठेस लगती है तो वह क्रोध करता है। जब परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने लगें तब भयवश क्रोध आता है।

'मैं' और 'मेरे' का अन्तर

प्र.–'मेरे' और 'मैं' के अन्तर में कर्म-निर्जरा कैसे है?

उ.–जब-जब क्रोध आए तब यह चिन्तन करना कि क्रोध भी मैंने किया। मैं आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा हूँ। 'मेरे' को छोड़कर 'मैं' में आ जाओ। जब तक 'मेरे' में रहोगे तब तक कर्म-बन्धन होगा और जब 'मैं' में आ जाओगे तब कर्म-निर्जरा शुरू होगी। 'मेरा' शरीर है और 'मैं' आत्मा हूँ। जीवन में जहाँ 'मेरे' के लिए प्रयास हो रहे हैं वहाँ 'मैं' के लिए पुरुषार्थ करो। हमारा ऐसा पुरुषार्थ हो कि 'मेरे' के प्रयास फीके पड़ जाएं और 'मैं' का पुरुषार्थ जीत जाए।

सम्यक्त्व-स्पर्श

प्र.–हमें कैसे पता चले कि हम सम्यक्त्व की ओर अग्रसर हैं?

उ.–ध्यान साधना के बाद यह अनुभव आता है कि मैं आत्मा हूँ तो सम्यक्त्व का स्पर्श होता है। जब तक जीव को यह अनुभव है कि पांच इन्द्रियाँ और छठे मन के विषयों में सुख है तो वह मिथ्यात्व में है। कितना ही

इस शरीर को खिला दो फिर थोड़े समय बाद भूख लगेगी। वासना, भोग, स्पर्श, विषय पूर्ति आदि में सुख नहीं है। आत्मा में अनन्त सुख है, ये श्रद्धा-विश्वास ही आपको सम्यक्त्व की ओर ले जाता है।

आत्म-ज्ञान / अनन्त ज्ञान

प्र.-प्रभो! अनन्त ज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उ.-अनन्त ज्ञान यानि वह ज्ञान जिसका कभी अन्त न हो। निज आत्मा के भीतर तीनों लोकों में विद्यमान आत्माओं को जानने की क्षमता है। उनकी आत्मा के चारों ओर लगे कर्मों को जानने की क्षमता है। बुद्धि का ज्ञान, पुस्तकों का ज्ञान सीमित है। परन्तु आत्मज्ञान अनन्त है। अनन्त ज्ञान वह है जो कभी समाप्त नहीं होता।

प्र.-प्रभो! ज्ञान इस भव है, पर भव है, तदुभव है, इस पर प्रकाश डालें?

उ.-ज्ञान जीवन भर साथ रहता है। मृत्यु उपरान्त भी जीव किसी भी गति में जाए तब भी आत्म ज्ञान, केवल ज्ञान, अनंत ज्ञान साथ ही रहता है। चाहे जीव नरक में था, चाहे पशु या कुंथुआ के रूप में था, वहां भी ज्ञान कर्मावरण से दबा था। परन्तु वहां भी ज्ञान परिपूर्ण था-कम नहीं था। व्यक्ति 20 से 25 वर्ष भौतिक ज्ञान को प्राप्त करने में लगा देता है। बुद्धि का ज्ञान साथ नहीं जाता, वह तो मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है।

परिभ्रमण का आधार

प्र.-प्रभो! चार गतियों में जीव का परिभ्रमण किस आधार पर होता है?

उ.-जब जीव के अत्यन्त पुण्य का उदय होता है तब उसे देवलोक की प्राप्ति होती है। अत्यन्त पाप के उदय से नरक गति मिलती है। पुण्य कम, पाप अधिक हो तो जीव को तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है और पुण्य अधिक, पाप कम हों तो जीव को मनुष्य गति प्राप्त होती है।

समाधि-विज्ञान

प्र.-प्रभो! हर क्षण समाधि में कैसे रहें?

उ.–जब आप खुली आँखों के साथ हो, तब आप हर आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार करो। किसी जीव को अपने से छोटा या बड़ा न जानो, किसी की निन्दा न करो। जब ऐसा होगा तब आप स्वयं ही आत्मभावों में आ जायेंगे। भीतर का आत्मभाव ही आप की समाधि है। बन्द आँखों से गहरा ध्यान करो। उस समय आपके भीतर कोई विचार, संस्कार, धारणा बाधक न बने। तब आप केवल समभाव, ज्ञाता-द्रष्टा भाव में स्थित हो, तो आपकी समाधि है।

प्रतिकूलता में समता

प्र.–प्रभो! साधना क्या है?

उ.–कितना ही आत्मा रट लो, पुस्तक में पढ़ लो। इस वाणी को प्रकाशित कर लो लेकिन प्रतिकूलता में समभाव नहीं है तो फिर अभी आप साधना से कोसों दूर हो। प्रतिकूलता में समता को प्राप्त करना है तो अपने भीतर डूबना होगा।

साधु का लक्षण

प्र.–प्रभो! साधु का लक्षण क्या है?

उ.–मैं आत्मा हूँ इस सत्य को स्वीकारो। जब तुम्हें पूरी दुनिया धोखा देगी फिर याद आयेगा, कोई मेरा नहीं, तब निर्जरा नहीं। निर्जरा तो तब है जब सारी दुनिया तुम्हें अपना मानती है पर तुम भीतर से यह समझते हो, मानते हो, कि कोई मेरा नहीं। इसमें अनन्त निर्जरा है, यही साधु का लक्षण है।

आत्मिक सुख

प्र.–प्रभो! आत्मिक सुख का अनुभव कैसे होता है?

उ.–इस संसार में कोई व्यक्ति खाने में सुख मान रहा है तो कोई गाने में सुख मान रहा है। कोई घूमने में, देश-विदेश की यात्रा में, पुस्तक में, लिखने व पढ़ने में कोई सुख मान रहा है लेकिन सुख भीतर है। हर अवस्था में आत्मा सुखी है। अनन्त सुख भीतर विद्यमान है जो ध्यान की गहराई में जाने पर अनुभव होता है।

सम्यक्त्व-स्पर्श

प्र.–सम्यक्त्व का स्पर्श कब होता है?

उ.–जब मैं आत्मा हूँ यह अटल विश्वास होता है और आत्म-ध्यान साधना के बाद आत्मानुभूति होती है तब जीव को सम्यक्त्व का स्पर्श होता

है। सुख आत्मा में है ऐसी गहरी श्रद्धा और अटल विश्वास ही आपको सम्यक्त्व की ओर ले जाता है।

आत्मानुभूति

प्र.–परिवार में रहते हुए क्या आत्मानुभूति हो सकती है?

उ.–अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए भी मैं आत्मा हूँ का सतत चिंतन, मनन, रमण व अनुभव किया जा सकता है। घर में कोई दु:खी है, परेशान है तो उसके साथ रहकर आत्मरमण हो सकता है। कर्त्तव्य को भूलकर मैं आत्मा हूँ के ध्यान में बैठने से निर्जरा नहीं है। सेवा के साथ पारिवारिक कर्त्तव्य पालन करते हुए आत्मचिंतन करने से निर्जरा है।

कर्ममुक्ति का साधन

प्र.–उदय कर्म क्षय कैसे होता है?

उ.–जब तुम ध्यान की अनंत गहराई में होते हो या सतत भेदज्ञान के चिंतन में होते हो तब उदय कर्म क्षय होता है। सतत भेदज्ञान एवं ध्यान की गहराई कर्म मुक्ति का उत्तम साधन है।

साधना में पुरुषार्थ

प्र.–साधना में और अधिक पुरुषार्थ कैसे करें?

उ.–हर श्वास आत्म-रमण की हो, हर श्वास में शरीर और आत्मा की भिन्नता का अहसास हो। हर पल समभाव बना रहे। सतत मैं आत्मा, मैं सत्य, मैं शाश्वत सत्य, इस प्रकार चिंतन करते जाएं तथा ध्यान की गहराई में जाते रहें। आत्मा के अष्ट गुणों का सतत चिंतन ही हमारा पुरुषार्थ है। इसी पुरुषार्थ से सिद्ध परमात्मा सिद्ध गति में पहुंचे हैं।

श्रेष्ठ मानव-जीवन

प्र.–प्रभो! धर्म के लिए मानव जीवन को श्रेष्ठ क्यों बतलाया?

उ.–ये जीव चार गति चौरासी लाख जीव योनि में भ्रमण करता आ रहा है। कभी नरक की भयंकर वेदना सही, वहां चारों ओर हाहाकार का वातावरण था। वहां एक क्षण भी सुख नहीं था। निगोद में प्रतिपल, प्रतिक्षण जन्म-मरण का दु:ख था। देवभव में परिग्रह में उलझे हुए थे। पशुभव में निरंतर भोजन का ही विचार था, ऐसे में वहां धर्म का विचार मन में आया ही

नहीं। मानव-जन्म मिलने के बाद भी कई बार धर्म का विचार ही मन में नहीं आया। कभी अंग पूर्ण नहीं मिले तो कभी संसार से विरक्ति नहीं हुई। वर्तमान में मानवभव में ही जीव अधिकाधिक कर्म-निर्जरा कर सकता है। धर्म की शरण लेकर सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, इसलिए धर्म हेतु मानव-जीवन श्रेष्ठ बतलाया है।

सुख है अपने ही भीतर

प्र.–प्रभो! अनन्त सुख का चिंतन करने से क्या होता है?

उ.–मैं अनन्त सुख वाला हूं। संसार के जितने भी सुख हैं वे सब विनाशी हैं। मेरे अन्तःकरण का सुख यानि निज का सुख अविनाशी है। सांसारिक सुख को प्राप्त करने के लिए कितना पुरुषार्थ करना पड़ता है और उसमें आश्रव ही आश्रव है। निज सुख की खोज में निर्जरा ही निर्जरा है। संसार में किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान में सुख ढूंढ़ना मिथ्या-दृष्टि का लक्षण है। न रमणीय स्थान में सुख है, न किसी बहुमूल्य वस्तु में सुख है, न किसी अनुरागी में सुख है, न भोग में सुख है, सुख अपने भीतर है। भीतर में उस अनन्त सुख की खोज करो।

प्र.–प्रभो! पुण्य का फल क्या है?

उ.–पुण्य का फल अनुकूल परिस्थितियां हैं।

प्र.–प्रभो! पाप का फल क्या है?

उ.–पाप का फल प्रतिकूल परिस्थितियां हैं।

आत्म-ज्ञान

प्र.–प्रभो! आत्म-ज्ञान प्राप्ति का पुरुषार्थ कैसे करें?

उ.–जैसे एक विद्यार्थी जो विद्या का अर्थ जान लेता है, समझ लेता है, जिसे पढ़ने में रुचि जग जाती है वह समय की सीमा से पार चला जाता है। एक उत्तीर्ण होने के लिए पढ़ता है। जो मन से पढ़ता है वह प्रथम आ जाता है। वह पढ़ाई बुद्धि की है जो उम्र के पड़ाव में धीरे-धीरे विस्मृत हो जाती है। शरीर का धर्म ही है जैसे उम्र बढ़ेगी वैसे मति-स्मृति, पढ़ा-लिखा ज्ञान घट जायेगा, लेकिन जो आत्म-ज्ञान है वह बढ़ता ही चला जायेगा। जिस साधक

को आत्म-ज्ञान की प्यास जागृत हो गई, एक पीड़ा, एक बेचैनी जागृत हो गई वह फिर समय की सीमा के पार सतत आत्म-चिंतन, आत्म-ध्यान के द्वारा कर्म क्षय करता जायेगा। तुम अपने भीतर सतत आत्म-चिन्तन बढ़ाते चले जाओ जिससे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति सुलभ होगी।

आत्म-शुद्धि

प्र.–प्रभो! आत्मा पर लगे कर्म की सफाई के लिए क्या करना चाहिए?

उ.–जैसे शरीर की सफाई के लिए स्नान की आवश्यकता है उसी प्रकार आत्मा के अष्ट गुणों पर अनादि से लगे अष्ट कर्म की सफाई के लिए साधना की आवश्यकता है। हम आत्म-रमण, आत्मानुभूति द्वारा आत्मा पर लगे कर्म की सफाई कर सकते हैं।

देह और आत्मा

प्र.–प्रभो! देह और आत्मा किस कारण साथ-साथ हैं?

उ.–देह विनाशी है और आत्मा अविनाशी है, देह असत्य है और आत्मा सत्य है। दोनों का धर्म जुदा-जुदा है परन्तु आयुष्य कर्म के कारण दोनों साथ-साथ हैं। आयुष्य कर्म टूटते ही दोनों अलग-अलग होंगे। यह चिन्तन आपके सम्यक्त्व के बीज को पुष्ट करेगा।

कल्याणक-आराधना

प्र.–प्रभो! कल्याणक के दिनों में विशेष साधना क्यों करते हैं?

उ.–कल्याणक यानि कल्याणकारी फल को देने वाले। कल्याणक के दिनों में की हुई साधना विशेष निर्जरा का कारण होती है। एक क्षण की साधना असंख्यात कर्म-बन्धन से मुक्ति दिला सकती है इसलिए कल्याणक के दिनों में विशेष साधना करते हैं। अप्रमत्त रहकर जागरूकता के साथ हर क्षण का उपयोग करते हैं।

आनंद का रसकंद : आत्मा

प्र.–प्रभो! आत्मा आनंद का रसकन्द कैसे है?

उ.–मैं अनन्त सुख वाला हूँ, आनन्द का रसकन्द हूँ। जैसे रसगुल्ले के हर

कण में मिठास है, वैसे ही मुझ आत्मा में आनन्द, शांति, सुख भरा है। हर अवस्था में, हर परिस्थिति में वह सदैव बढ़ता ही चला जाता है। ऐसे मैं आत्मा आनंद से परिपूर्ण हूँ।

आत्म-श्रद्धा

प्र.–प्रभो! आत्मा पर श्रद्धा करने से क्या होता है?

उ.–मैं ध्येय तथा श्रद्धेय हूँ, मेरा कोई श्रद्धा का केन्द्र नहीं है। आज तक मैंने जाप पर, पाठ पर, देव पर, मूर्ति पर श्रद्धा की, पर स्वयं आत्मा पर श्रद्धा नहीं की। जब तक आत्मा पर श्रद्धा नहीं हुई तब तक जीव अनन्त मिथ्यात्व में परिभ्रमण करता रहा। आत्मा पर श्रद्धा करते ही जीव मिथ्यात्व से सम्यक्त्व की ओर आ जाता है। किसी और पर श्रद्धा करे तो उन सबके समक्ष प्रार्थनायें की जाती हैं। जब आत्मा पर श्रद्धा हो जाये तो मैं स्वयं भगवान हूँ, परमात्मा हूँ, इसका पूर्ण अहसास होता है।

समत्व : सुख का सेतु

प्र.–प्रभो! समता में सुख कैसे होता है?

उ.–संसार जाल के समान है, जब गरीबी में था तो अमीरी में सुख ढूंढ रहा था, गृहस्थ था तो साधुपने में सुख ढूंढ रहा था। इस प्रकार चार गति के जाल में नित्य नये ढ़ंग से देव, तिर्यंच, मनुष्य, नारकी आदि चार गति चौरासी लाख जीवयोनि में भ्रमण करता रहा, परन्तु इस संसार में मैंने कहीं भी सुख नहीं पाया। सुख है तो समभाव में है, ममत्व में सुख नहीं, सुख तो समत्व में है। जीव अज्ञान दशा में संसार के संबंधों में ममत्व करता रहा और दु:ख के जाल में फंसता गया। अब समता में सुख का अनुभव कर निर्जरा के मार्ग पर हमें अग्रसर होना है।

तं सच्चं खु भगवं

प्र.–प्रभो! सत्य धर्म क्या है?

उ.–स्वयं को जानना ही सत्य धर्म है। चाहे जितने अनुष्ठान कर लो, तप कर लो, जप कर लो, प्रवचन कर लो, भीड़ इकट्ठी कर लो पर निज (आत्मा) को नहीं जाना तो वह सत्य धर्म नहीं है। समस्त आडंबर व्यवहार

में धर्म हो सकते हैं परंतु सत्य धर्म निज का अनुभव है। आत्म-रमण करना ही धर्म-आराधना है। समस्त साधना का सार तथा मर्म शुद्धात्मा में है और इस ओर बढ़ने के लिए किया हुआ पुरुषार्थ ही सच्चा पुरुषार्थ है।

क्षणिक जीवन

प्र.–प्रभो! यह जीवन क्षणिक कैसे है?

उ.–प्रात:काल की स्वर्णिम छटा, सूर्य की पहली किरण के समान संसार के संयोग हैं। वे संयोग क्षणिक हैं क्योंकि पहली किरण भी क्षणिक है। जगत् में जीव संयोग में सुख मान रहा है किन्तु ये संयोग कमल के पत्ते पर पड़ी ओस की बूंद के समान क्षणिक हैं। अपने ललाट पर जो लालिमा है वह अस्ताचल की ओर बढ़ रहे सूर्य के समान है जिसने कुछ पलों में अस्त हो जाना है। वैसे ही सब पर काल की छाया पड़ रही है। अत: यह जीवन क्षणिक है।

शरण–अशरण

प्र.–प्रभो! संसार के संयोग अशरण कैसे हैं?

उ.–जैसे अनेक छिद्रों वाली नाव समुद्र के मध्य में डूब जाती है वैसे ही कामना, वासना, इन्द्रिय विषयों के छिद्र जिस आत्मा में हों और दुर्भाग्य से वह आत्मा किसी कुगुरु के हाथ में पड़ गई तो जो हाल छिद्र वाली नौका का होता है वही हाल हमारा होगा। अर्थात् जीवन में ऐसा गुरु मिल गया जिसे आत्म-ज्ञान, आत्म-दृष्टि नहीं मिली है तो वह गुरु मझधार में जाकर नाव डुबा दे तो किसकी शरण होगी? जिस प्रकार डूबती नैया को कोई शरण नहीं दे सकता उसी प्रकार संसार के संयोग हमारे लिए शरणभूत नहीं हैं।

प्र.–प्रभो! चार शरण का क्या माहात्म्य है?

उ.–श्वासें अनमोल हैं। एक-एक पल बीतता जा रहा है, अन्तिम पल आने पर उसे कोई बढ़ा नहीं सकता। जितने भी तुमने सुरक्षा के साधन जुटाये हैं वे कोई भी तुम्हें मृत्यु से बचा नहीं पायेंगे। इसीलिए जन्म-मरण के समय चार शरण उत्तम शरण हैं। जो सतत भेद-ज्ञान में जी रहे हैं ऐसे अरिहंत की शरण। जिन्होंने अपने ध्रुवधाम को पा लिया ऐसे सिद्ध की शरण, भेद-ज्ञान की साधना का पुरुषार्थ कर रहे साधु की शरण एवं धर्म की शरण उत्तम शरण है।

शाश्वत-सुख की बाधा

प्र.-प्रभो! जीव को शाश्वत सुख का अहसास क्यों नहीं होता?

उ.-जैसे जल में रात-दिन मंथन करने से भी घी हाथ में नहीं आता, रेत को कोल्हू में रात-दिन पेलने पर तेल नहीं निकलता, उदय कर्म या अच्छे भाग्य के बिना व्यापार में अच्छी सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार निज आत्मा के ज्ञान व उसके सतत अहसास के बिना जीव को शाश्वत सुख का अनुभव नहीं होता।

एकत्व भावना

प्र.-प्रभो! एकत्व भावना का पोषण किस प्रकार करें?

उ.-निज आत्मा आनंद, शांति, सुख का सागर है। सागर के समान गहराई है इस आत्मा में। समस्त द्रव्य जड़ हैं लेकिन आत्मा ज्ञान का भंडार है। जन्म-मरण, सुख-दु:ख सभी अवस्थाओं में आत्मा अकेला ही है। स्वर्ग-नरक, देव-तिर्यंच, मनुष्य, मोक्ष सभी गतियों में जीव अकेला ही यात्रा करता है। यहां कोई किसी का दु:ख-सुख ले नहीं सकता। जीव अकेला है, अकेला था और अकेला ही रहेगा। आत्मा चार गति चौरासी लाख जीवयोनि में अकेली ही थी। इस प्रकार निरन्तर एकत्व भावना का पोषण किया जा सकता है।

प्र.-प्रभो! जीव का भव-भ्रमण कैसे बढ़ता है?

उ.-संसार में समस्त जीवों का संबंध देह तक ही है। समस्त संबंध शरीर के हैं परंतु मोह में अंधा होकर मनुष्य स्वयं बंधन में फंसता जा रहा है। समस्त व्यक्तियों के सारे संबंध जब तक ये शरीर है तथा शरीर के संयोग हैं तब तक हैं। संयोग पूरे होने पर सब संबंध बिखर जायेंगे परंतु व्यक्ति संयोग में, अज्ञान में, मोह में भव-भ्रमण बढ़ा लेता है।

आत्म-रमण

प्र.-प्रभो! आत्म-रमण निज पूंजी कैसे है?

उ.-समय बीतता जा रहा है जिसमें श्वासें बहती जा रही हैं। जो घड़ी बीत गई वो वापस नहीं आयेगी। इस पृथ्वी पर जो कुछ इकट्ठा किया सब श्वास छूटते ही इसी धरा पर पड़ा रह जायेगा। जीवन भर जो भी धन-दौलत, जमीन-जायदाद, प्रतिष्ठा आदि कमाई वो कुछ भी साथ जाने वाली नहीं है।

व्यक्ति अन्त में केवल धर्म की कमाई ही साथ लेकर जाता है। आत्मा में जीने का अवसर खो दिया तो अन्त में पछताना ही पड़ेगा। आत्म-साधना, आत्म-रमण, आत्म-चिंतन ही वास्तव में निज पूंजी है और वही साथ जायेगी। अतः हर क्षण आत्म-चिंतन, आत्म-रमण, अन्तर्यात्रा में गहरे डूब जाओ। अपनी निज पूंजी इकट्ठी कर लो, पता नहीं श्वास कब छूट जाये।

उपवास का स्वरूप

प्र.–प्रभो! उपवास किसे कहते हैं?

उ.–बाह्य तप के अन्तर्गत भोजन को छोड़ना उपवास कहलाता है। अन्तर् तप के अंतर्गत उपवास का अर्थ है अपनी आत्मा के करीब आना। साधनाकाल के अन्तर्गत साधक अपनी आत्मा में रमण करते हैं। आप उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, बात करते भी उपवास की स्थिति में रह सकते हैं।

समता से कर्म-निर्जरा

प्र.–प्रभो! कर्म निर्जरा किससे ज्यादा होती है?

उ.–समभाव से। हजारों वर्षों की तपस्या एक तरफ हो और एक क्षण की समता एक तरफ हो तो समता का पलड़ा भारी होगा। शारीरिक क्षमता है तो तप करो, पर साथ में साधना भी करो। अगर तप करने से साधना छूट जाती है तो साधना को प्राथमिकता दो। कोरा तप मुक्ति नहीं देता। समतापूर्वक की हुई साधना एवं समतापूर्वक किया हुआ तप निर्जरा का मूल कारण है।

प्र.–प्रभो! हर श्वास में हम कर्म-निर्जरा कैसे करें?

उ.–हर पल, हर क्षण, हर श्वास अन्तर्यात्रा की हो। अपने आप में गहरे प्रवेश करें। खुली आंखों से इस जगत में किसी ने कुछ भी नहीं पाया। जिसने भी कुछ भी पाया सब बंद आंखों से पाया है। न राग, न द्वेष, हर श्वास वीतरागता की हो।

प्र.–प्रभो! कर्म आत्मा से कैसे चिपकते हैं और कैसे अलग होते हैं? इसको हम कैसे समझें?

उ.–यह समझने का विषय नहीं है। आपको इतना ही समझना है कि आपकी आत्मा के चारों ओर असंख्यात कर्म लगे हुए हैं और आपने उन्हें क्षय करना है। यह बुद्धि का ज्ञान है और बुद्धि का ज्ञान काम नहीं आएगा। आवश्यक है शुद्धात्म-ज्ञान।

शीघ्र लक्ष्य-प्राप्ति

प्र.–प्रभो! संयम लेने के पश्चात् कैसे आराधना करें जिससे शीघ्र लक्ष्य प्राप्त हो जाए?

उ.–मैं आत्मा शुद्ध चैतन्य, अविनाशी सत्य, त्रिकाल सत्य हूं। आज से 30 वर्ष पूर्व परमात्मा के समवसरण में एक मुनि दर्शनार्थ आए, एक देशना सुनी, एक देशना से वैराग्य बीज भीतर डल गया। परिवारजनों की आज्ञा लेकर जिनदीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद वैराग्य काल की प्रथम देशना का एक शब्द अपने भीतर बांध दिया, मैं आत्मा हूँ, आत्मा था, आत्मा रहूंगा। नरक, निगोद, देव, पशु, मानव सब जगह मैं आत्मा था, हूँ और रहने वाला हूँ। उस वैराग्य काल का सुना मैं आत्मा हूँ यह वाक्य 30 वर्ष तक अपने भीतर अपनाया। मात्र संवत्सरी के दिन उपवास किया, अन्य कोई तप नहीं किया, भोजन किया, हर कार्य किया। मैं आत्मा हूं का चिंतन करते-करते केवलज्ञान के निकट पहुंच गए।

कल्याणक-महत्व

प्र.–प्रभो! कल्याणक का क्या महत्व है, उन दिनों में क्या भाव रखें?

उ.–केवलज्ञान आदि कल्याणक के दिन महान उत्सव के दिन होते हैं, ये दिन बहुत शुभ होते हैं। आज तक अनन्त सिद्ध हो गए, मैं सिद्ध कब बनूंगा, यह चिन्तन अपने भीतर अपनाइये। आज तक जन्मदिन मनाए, अब जन्म-कल्याणक मनाएं और मोक्षपुरी में हमारा वास हो, ऐसा भाव रखें।

कर्म-बंध विराम

प्र.–प्रभो! क्या पुरुषार्थ करें जिससे हमारे कर्म-बन्धन रुकें?

उ.–प्रभु ने फरमाया – बहुत विश्राम किया, बातें की, भोग भोगे। कितनी बार अंधे, गूंगे, बहरे, अपाहिज का जीवन जीया। हर गति में, हर योनि में

भव-भव यात्रा की। ये यात्रा हर जीव ने की। जब तक दृष्टि सम्यक् नहीं हुई तब तक भव-भ्रमण बढ़ता गया। आज दृष्टि सम्यक् कर लो तो आपका कर्म-बंधन रुक जायेगा। अपने स्व के अर्थ को जानो, स्व में रमण करो इससे नवीन कर्म नहीं बंधेगा और बंधे हुए कर्मों की निर्जरा होगी। हमारा पुरुषार्थ घनघाती कर्म क्षय करने का हो। इस संसार में क्या हो रहा है, इस देह का क्या हो रहा है इसकी परवाह न करते हुए मोक्ष-मार्ग पर हमें आगे बढ़ना है। हर श्वास में ऐसा पुरुषार्थ हो।

उदय कर्म का महत्व

प्र.–प्रभो! उदय कर्म क्या है, इस पर प्रकाश डालिए?

उ.–मैं एक अविनाशी आत्मा चार गति चौरासी लाख जीवयोनियों में भ्रमण करता हुआ आज किसी उदय कर्म के कारण यहां हूं। कई ऐसे संबंधी हैं जिनके साथ हम रहना पसंद करते हैं। कई ऐसे हैं जिनके साथ न चाहते हुए भी हमें रहना पड़ता है। कई मित्र हैं तो कई शत्रु हैं, किसी से अनुराग है तो किसी से द्वेष है। किसी उदय कर्म से हम मां की कुक्षि में आए। मां का उदय कर्म आया तो हम उसके गर्भ में आए। हमने कोई सोचा नहीं था कि यह मां मिले, यह पिता मिले, न हमारी कोई पसंद थी। किन्तु हमने कई ऐसे कर्म किए जिनके उदय से माता-पिता प्राप्त हुए। संसार में हजारों व्यक्ति हैं फिर भी वही माता-पिता मिले। हमारा कोई चुनाव नहीं था। निश्चित ही वह हमारा उदय कर्म है। उदय कर्म से कितनी बार मानव बने, पशु-पक्षी बने, अनन्त गर्भों की यात्रा की। प्रत्येक संबंधी का संबंध तुम्हारा उदय कर्म है। हर कर्म निश्चय में हमारा उदय कर्म है। जो कुछ मिला हमारे उदय कर्म के कारण मिला। कर्म करते समय हमें पता नहीं था कि इसका क्या फल आयेगा लेकिन प्रत्येक कर्म का फल हमें मिल रहा है।

प्र.–प्रभो! कर्म शब्द का विज्ञान स्पष्ट करें?

उ.–कर्म शब्द बहुत गहरा है। दिखने में शब्द छोटा है पर इसका अर्थ बड़ा गहरा है। गर्भ से लेकर आज तक अज्ञान अवस्था में मिथ्यात्व के कारण प्रतिक्षण कर्म का बंधन किया। अनंत जन्मों में जिस-जिस योनि में गए वहां भी मिथ्यात्व

के कारण अनंत कर्म किए। अनन्त पुण्य से मिली मानव-देह में अज्ञान व मिथ्यात्व के कारण कर्म संचय किया। प्रतिपल, प्रतिक्षण जो कुछ हम कर रहे हैं वह हमारा कर्म है। कर्म शब्द सूक्ष्म है, छोटा है, पर विस्तार बहुत बड़ा है। एक-एक संबंधी से जुड़ा कर्म छंटेगा, एक-एक मोह का कर्म छंटेगा, ज्ञान का आवरण हटेगा, हर पुद्गल स्पर्शना पूरी होगी, फिर सिद्धालय मिलेगा।

प्र.–प्रभो! कर्मों का बंधन कैसे होता है?

उ.–आज दिन तक इस जन्म, पूर्वजन्म, जाने-अनजाने, कारण-अकारण, जब तक दृष्टि सम्यक् नहीं है तब तक मिथ्यात्व के कारण लगातार कर्म-बंधन किया। शरीर व आत्मा को एक जानकर जो कर्म किया वह सब बंधन था। प्रमाद किया, भोजन किया, भोजन में रस लिया, स्नान किया, मनोरंजन के साधन देखे, क्रिया-प्रतिक्रिया की। कषाय के वशीभूत होकर प्रतिपल, प्रतिक्षण मिथ्या दृष्टि में, अज्ञान में कर्म बंधन किया। प्रतिपल, प्रतिक्षण कोई पाप न करता हुआ भी कर्मों का बंधन एक मिथ्या दृष्टि करता है।

स्वतंत्रता का अहसास

प्र.–प्रभो! हम अपनी स्वतंत्रता का अहसास कैसे करें?

उ.–मैं आत्मा अकेला था, हूँ और रहूंगा। न अनुरागी के द्वारा किया हुआ तप, अनुष्ठान मेरे निज के कर्म क्षय करेगा, न मेरे द्वारा किया गया अनुष्ठान मेरे अनुरागी के कर्म क्षय कर सकता है। कर्म के क्षेत्र में हर साधक, हर जीव स्वतंत्र है। जीव चाहे तो निज अनुभूति के सतत पुरुषार्थ के साथ कर्म निर्जरा कर सकता है और संसार बंधनों में उलझ कर, मिथ्यात्व में रहकर हर श्वास में कर्म बंधन कर सकता है। जीव कर्म-बंधन और कर्म-निर्जरा में स्वतंत्र है। इस स्वतंत्रता का अहसास करते हुए एकत्व भाव में रमण करो।

पुरुषार्थ

प्र.–प्रभो! पुरुषार्थ सहज रूप में कैसे हो?

उ.–मैं अविनाशी सत्य हूँ। इस सत्य का सतत चिन्तन, इस चिन्तन का सतत पुरुषार्थ, इस पुरुषार्थ में बीती हर श्वास कर्म की निर्जरा है। कर्म निर्जरा

के बिना मुक्ति नहीं है, यह जानकर कर्म निर्जरा का हर पुरुषार्थ कीजिए। हर कर्म की निर्जरा करनी है, चाहे वह कोई कर्म हो। एक कर्म भी शेष रह जाने पर मोक्ष नहीं हो सकता। हर श्वास कर्म-निर्जरा में बिताओ। यह संसार क्या कर रहा है, उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं। मैं अकेला था, हूँ और रहूंगा। मैं जो साधना कर रहा हूं वह मेरे निज की पूंजी है। यदि यह सत्य आपके भीतर बैठ गया तो पुरुषार्थ भी करना नहीं पड़ेगा, पुरुषार्थ सहज हो जायेगा।

प्र.–प्रभो! समस्त पुरुषार्थ कब तक करना है?

उ.–सारा पुरुषार्थ केवलज्ञान, केवलदर्शन तक है। केवलज्ञान के बाद कोई पुरुषार्थ नहीं। आयुष्य कर्म टूटा और मोक्ष। जब तक केवलज्ञान नहीं होता तब तक स्व में जीने का पुरुषार्थ करना है। स्वभाव में रहते हुए पर-भाव छूट जाएंगे और हम मुक्ति के निकट होंगे। यह पुरुषार्थ अति सरल है। हर कार्य में केवल 'मैं आत्मा हूँ' का चिंतन-मनन करते हुए रमण करते रहो।

प्र.–प्रभो! हमारा संकल्प कैसा हो?

उ.–जीवात्मा को आत्म-चिंतन, आत्म-रमण, अन्तर्यात्रा का पुरुषार्थ करते हुए अपने जन्म को सार्थक करने का संकल्प ग्रहण करना चाहिए। एकत्व में जीने व सतत सत्य-रमणता का संकल्प करो। स्व को पाने का पूर्ण संकल्प व पूर्ण पुरुषार्थ हो।

प्र.–मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ.–सत्य को असत्य मानना मिथ्यात्व है। सत्य है मैं जीव आत्मा हूँ, असत्य है मैं जड़ शरीर हूँ, मैं देह हूँ, मैं व्यक्तित्व हूँ। अपने को देह मानना जीव की सबसे बड़ी भूल है। इस कारण जीव हर समय कर्म बांधता है। अत: कर्म आस्रव में सबसे पहले आस्रव का स्थान मिथ्यात्व का है। पच्चीस बोल में इसके दस भेद बताएं है।

प्र.–सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ.–सत्य को जानना, मानना, स्वीकारना, उस पर श्रद्धा करना सम्यक्त्व है। जीव को अपने स्वरूप का बोध हो जाना सम्यक्त्व है। जीव का अज्ञान है

कि वह सारे जग को जानता है किन्तु अपने स्वरूप को नहीं जानता, उस पर श्रद्धा नहीं करता, उसे समय नहीं देता। सम्यक्त्व दृष्टि परिवर्तन की साधना है, जड़ से दृष्टि हटाकर जीव पर दृष्टि लाना। जीव के स्वरूप पर, अस्तित्व पर श्रद्धा करना, उसके गुणों को जानना, मानना व उनमें ठहरना सम्यक्त्व है।

क्षायिक सम्यक्त्व जीव का गुण है जो दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय होने पर तथा अनंतानुबंधी कषाय की चौकड़ी क्रोध, मान, माया, लोभ के क्षय होने पर प्राप्त होती है। यह प्रत्येक साधक का लक्ष्य है कि वह इस भव में क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करे, इसमें अरिहंतवाणी, सद्गुरु एवं स्वयं का पुरुषार्थ निमित्त बनता है।

प्र.–घाती कर्म किसे कहते हैं?

उ.–ऐसे कर्म जो आत्मा के मूल गुणों का घात करें, जिससे जीव को अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतशक्ति नहीं प्रकटती। ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म, अन्तराय कर्म ये घाती कर्म हैं। इनके क्षय होने से जीव को केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकटता है। आत्म ध्यान से मिथ्यात्व व मोह कर्म क्षय होते हैं। उसके पश्चात् शेष कर्म अन्तर्मुहूर्त में क्षय हो जाते हैं।

प्रमाद : ध्यान का शत्रु

प्र.–प्रभो! ध्यान का शत्रु कौन है?

उ.–प्रमाद ध्यान का शत्रु है। साधनाकाल में जब कभी प्रमाद आये तो स्वयं को सजग कर लो। आत्मा कभी सोती नहीं। आत्मा सतत ज्ञाता-द्रष्टा और जागरूक है। साधनाकाल में प्रमाद को पराजित कर सत्य पर जीत हासिल करनी है।

आत्मा के आठ गुण

प्र.–प्रभो! आत्मा के आठ गुणों पर प्रकाश डालिए!

उ.–आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त शक्ति, अमूर्तपना, अगुरुलघु, क्षायिक सम्यक्त्व, अटल अवगाहना ये आठ गुण हैं।

वैसे तो आत्मा अनन्त गुणों का भंडार है परन्तु जब हमारे आठ कर्म क्षय होते हैं तब पूर्वोक्त आठ गुण प्रकट होते हैं। ज्ञानावरणीय क्षय होने पर अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणीय क्षय होने पर अनन्त दर्शन, वेदनीय क्षय होने पर अनन्त सुख, मोहनीय क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व, अन्तराय कर्म क्षय होने पर अनन्त शक्ति। ये चार घनघाति कर्म क्षय हो जायें तो उसके बाद पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है।

अनन्त ज्ञान

प्र.–प्रभो! अनन्त ज्ञान पर प्रकाश डालिए!

उ.–मैं आत्मा अनन्त ज्ञान वाला हूं। जितना भी बुद्धि का ज्ञान है वह सीमित है। युवावस्था में बुद्धि कुशाग्र होती है, वृद्धावस्था में मंद होती है तथा मृत्यु के साथ सारा ज्ञान समाप्त हो जाता है। अनन्त जन्मों में बुद्धि का ज्ञान पढ़ा, याद किया और भूल गये परन्तु अनन्त ज्ञान ऐसा है जो 32 आगमों में नहीं मिलेगा, किसी व्यक्ति के पास नहीं मिलेगा, दुनिया के किसी विद्वान या विद्यालय में नहीं मिलेगा। वह अनन्त ज्ञान आपके भीतर विद्यमान है। वह ज्ञान कभी समाप्त होने वाला नहीं है, वह ज्ञान हर अवस्था में आपके पास है। हर गति, हर जाति, हर स्थिति में वह आपके भीतर में है। उस अनन्त ज्ञान में तीनों लोकों को जानने की क्षमता है। ऐसे अनन्त ज्ञान का सतत चिन्तन व उसमें रमण करने से ज्ञानावरणीय कर्म टूटता है और अनन्त ज्ञान प्रकट होता है।

अनन्त दर्शन

प्र.–प्रभो! दर्शनावरणीय कर्म के बारे में प्रकाश डालें! दर्शन का तात्पर्य देखना ही है या कुछ और?

उ.–अनन्त पुण्य उदय होने पर जीव मिथ्या दृष्टि से सम्यक् दृष्टि होता है। मिथ्या दृष्टि में हमने शरीर को मैं माना और आत्मा को भूल गये। जिन भवों में स्वयं को शरीर माना वहां अनन्त कर्म बांधा। मैं आत्मा हूं इसका अनुभव होने पर उस पर दृढ़ श्रद्धा होना अनन्त दर्शन है और प्रतिपल, प्रतिक्षण मैं आत्मा हूँ तथा जगत के जीव मात्र में आत्मा है ऐसा देखने पर दर्शनावरणीय कर्म टूटता है और अनन्त दर्शन प्रकट होता है।

अनन्त-सुख

प्र.–प्रभो! अनन्त सुख से क्या तात्पर्य है?

उ.–अनन्त सुख वह है जिसका कभी अन्त नहीं होता। संसार में जितने भी सुख हैं वे क्षणिक हैं। पुण्य का योग होता है तो सुख आता है। पाप का उदय होता है तो दु:ख आता है। सुख और दु:ख का मिश्रण संसार है। संयोग में सुख है तो वियोग में दु:ख है। सुख और दु:ख में सारा संसार भ्रमण कर रहा है। इनसे अलग मैं अनन्त सुख वाला हूँ। वो सुख जो कभी भी कम न हो। ध्यान की गहराई में जाते हो तब उस सुख की झलक मिलती है। वो सुख अनन्त है। संसार के किसी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति से उस सुख की तुलना नहीं की जा सकती। ऐसा मैं अनन्त सुख वाला हूँ।

अनन्त शक्ति

प्र.–अनन्त शक्ति से क्या तात्पर्य है?

उ.–जिस शक्ति का कभी अन्त न हो उसे अनन्त शक्ति कहते हैं। वह हर अवस्था में हमारे पास है। चाहे हम जेल में हों या वन में, राजमहल में हों या कुटीर में। अनन्त का अर्थ ही है कि जिसका कभी अन्त न हो। आत्मा में वह शक्ति है जो एक समय में मध्य लोक, ऊर्ध्वलोक, 26 देवलोक पार कर अपने घर सिद्धालय जा सकती है। शरीर की शक्ति तो उम्र के साथ क्षीण हो जाती है परन्तु आत्मा अनन्त शक्ति का भंडार है जिसकी शक्ति कभी क्षीण नहीं होती।

आत्मा का स्वरूप

प्र.–प्रभो! आत्मा के अमूर्त गुण क्या हैं?

उ.–अमूर्त यानि जिसका कोई आकार नहीं। वस्तुत: आत्मा का कोई आकार नहीं है। आत्मा न मोटी है, न पतली है, उसका रंग-रूप नहीं, वह निराकार है। वह निराकार है फिर भी अनन्त सुख-शक्ति से परिपूर्ण है। वह मूर्त शरीर में होते हुए भी अमूर्त है। आत्मा के अमूर्त गुण का चिन्तन करने से आपसी भेदभाव कम होते हैं।

प्र.–प्रभो! अगुरुलघु का अर्थ क्या है?

उ.–अगुरुलघु अर्थात् न कोई छोटा और न कोई बड़ा। चार गति में विद्यमान सभी जीव मेरे समान हैं। सिद्धशिला में विराजित आत्मा और मेरी

आत्मा दोनों में कोई अन्तर नहीं। चाहे वह निगोद का जीव हो या फिर नरक का नेरिया हो, देवलोक का देव हो या मनुष्य हो। सभी की आत्मा आत्मदृष्टि से एक समान है।

क्षायिक सम्यक्त्व

प्र.–प्रभो! क्षायिक सम्यक्त्व क्या है?

उ.–क्षायिक सम्यक्त्व यानि 'मैं आत्मा हूँ' का अटल विश्वास। चाहे कैसी भी अवस्था हो, देव आकर परीक्षा लें, वातावरण प्रतिकूल हो, उस समय में यह अटल श्रद्धा कि मैं आत्मा ही हूँ, सतत आत्म-भावों में रमण और आत्मा का चिन्तन तथा उसमें जीना, यही क्षायिक सम्यक्त्व है।

अटल अवगाहना गुण

प्र.–प्रभो! अटल अवगाहना गुण का क्या अर्थ है?

उ.–अटल अवगाहना अर्थात् अन्तिम शरीर में, अन्तिम समय में जो आसन होगा उसके दो तिहाई हिस्से में यह आत्मा अटल स्थान सिद्धालय में ग्रहण करेगी। उस स्थान में आत्म-प्रदेश रहते हैं। अटल अवगाहना यह आत्मा का एक गुण है।

प्र.–प्रभो! क्या दो आत्माओं का आपस में संपर्क होता है?

उ.–संपर्क आत्मा का नहीं, देह का देह से होता है। देह द्वारा हम जो भी ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं वह उदय कर्माधीन है। आत्मा का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अष्ट गुणों से युक्त है।

आकर्षण-मुक्ति

प्र.–प्रभो! संसार के आकर्षण से दूर होने के लिए हम क्या करें?

उ.–हर स्थान, हर परिस्थिति में साधना को प्रमुखता दें। जीवन में दो ही परिस्थितियां हैं, अनुकूलता या प्रतिकूलता। हर स्थिति में सत्य का चिंतन करो। इस संसार में किसी व्यक्ति, वस्तु से कोई शिकायत नहीं, जो मुझे मिला है, निज के द्वारा किये कर्मों से मिला है। भिन्न-भिन्न योनियों में जो भी क्रिया-प्रतिक्रिया, मन से, वचन से, काया से की, कराई, अनुमोदन किया, चौरासी लाख जीवयोनि में जो भी हुआ वह आज हमारे समक्ष है।

इसलिए संसार के किसी व्यक्ति से कोई शिकायत नहीं। हर श्वास में आत्मतत्व का चिंतन करते हुए साधना में इतना भीतर डूबें कि संसार के समस्त आकर्षण पीछे छूट जाएं।

आत्म निरीक्षण–आत्म परीक्षण

प्र.–प्रभो! पंचम काल में एक साधु मुक्ति के निकट कैसे पहुंच सकता है?

उ.–आत्म-ध्यान साधना समय की सीमाओं में बंधी हुई नहीं है। यदि एक साधु पंचम काल में जीवन पर्यन्त की जाने वाली सामायिक का पूर्ण रूप से आचरण करता है तो मोक्षपुरी के अति निकट पहुंच सकता है। हर श्वास में आत्मचिंतन, आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण से यह संभव है।

प्र.–प्रभो! ज्ञेय के बारे में कुछ कृपा करें?

उ.–जो जानने योग्य है, वही ज्ञेय है।

प्र.–प्रभो! आत्मस्थिति कैसे आती है?

उ.–हर छोटा-बड़ा, अच्छा-बुरा उसे जानते व देखते हुए कुछ प्रतिक्रिया न करें तो आत्मस्थिति आ जाती है।

प्र.–प्रभो! विनाशी शरीर में अविनाशी आत्मा का चिंतन कैसे करें?

उ.–चिंतन करो कि किसी अंग विशेष से आत्मा निकल जाए तो उस अंग का क्या होगा? वह अंग दूसरे पर आधारित हो जायेगा, वह अंग मृतप्राय हो जायेगा। सिर से पांव तक हर अंग में चेतना का अनुभव कीजिए। यह चेतना अविनाशी है। उसके ऊपर कर्म लगे हैं और उसके ऊपर औदारिक शरीर है। हड्डी, मांस, मज्जा, रक्त, मल जो भी अंदर भरा हुआ है वह सब कचरा विनाशी है और कर्म भी विनाशी है। उसके भीतर आत्मा एवं उसके आठ गुण अविनाशी हैं। विनाशी शरीर में अनित्य भावना का चिंतन करते हुए अविनाशी आत्मतत्व का साक्षात्कार किया जा सकता है।

○○○

भक्ति-गीत

जरा-सा इतना बता दो भगवन्!

जरा-सा इतना बता दो भगवन्!
लगन ये कैसी लगा रहे हो।
मुझी में रहकर, मुझी से मेरी,
ये खोज कैसी करा रहे हो।।ध्रु.।।

हृदय भी तुम हो, तुम्हीं हो प्रियतम,
प्रेम भी तुम हो, तुम्हीं हो प्रेमी।
पुकारता मन तुम्हीं को क्यों है,
तुम्हीं जो मन में समा रहे हो।।1।।

सीप भी तुम हो, तुम्हीं हो मोती,
दीप भी तुम हो, तुम्हीं हो ज्योति।
तुम्हीं को लेकर तुम्हीं को ढूंढूं,
नयी ये लीला बता रहे हो।।2।।

कर्म भी तुम हो, तुम्हीं हो कर्त्ता,
धर्म भी तुम हो, तुम्हीं हो धर्त्ता।
निमित्त कारण मुझे बनाकर,
ये नाच कैसा नचा रहे हो।।3।।

बूंद भी तुम हो, तुम्हीं हो सागर,
चांद भी तुम हो, तुम्हीं दिवाकर।
तुम्हीं हो मेरे हृदय की धड़कन,
ये सांसों सांस चला रहे हो।।4।।

❍❍❍

तुइयों मेरे नाल मालकां

ओय अक्खां खोला ते वेखा संसार मालकां।
बंद करां तो तुइयों मेरे नाल मालकां।।ध्रु.।।

महाविदेह क्षेत्र दे विच तीर्थंकर ए तूं।
लक्खां तर गए लक्खां नूं तारन वाला ए तूं।
ओ सोनी लग दी ऐ सानुं तेरी वाणी मालकां।।1।।

लोकी कैंदे ने गम एत्थे भुल्ल जांदे ने।
जदों ध्यान साधना विच डुब जांदे ने।
आत्म-दर्शन मिल जाए खोलो भाग मालकां।।2।।

सारी दुनिया दा इक्को रिश्तेदार तुंइए।
मेरी जिंदड़ी दी सच्ची सरकार तुंइए।
कर दो किरपा ते होवां मैं निहाल मालकां।।3।।

○○○

अरिहंत देव प्यारे

अरिहंत देव प्यारे, अपना हमें बना ले।
अपना हमें बना ले, चरणों से अब लगा ले।।ध्रु.।।

तुम बिन नहीं है कोई, सुध-बुध जो ले हमारी।
है खूब खोजा देखा, मतलब की दुनिया सारी।
धोखे के जाल से अब दाता हमें छुड़ा दे।।

कोई नहीं है साथी, है चार दिन के मेले।
सम्बन्ध इस जगत के सब झूठ के झमेले।
तू भी न बांह पकड़े, फिर कौन है सम्भाले।।

कृपा से तू मिटा दे, भव-भ्रमण का बखेड़ा।
इस इक नजर से होवे, मेरा भी पार बेड़ा।
भवसिन्धु है भयानक इस दास को तिराले।।

○○○

तेरे करम से बेनियाज

तेरे करम से बेनियाज कौनसी शय मिली नहीं-2 ।
झोली ही मेरी तंग है तेरे यहां कमी नहीं-2।।ध्रु.।।

जीने को जी रहा हूं मैं, मालिक! तेरे बगैर भी-2
जिन्दगी जिसको कह सकूं, ऐसी तो जिन्दगी नहीं-2 ।।1।।

कब से पुकारता है दिल, सुनता मगर कोई नहीं-2
मेरा तो इस जहान में, तेरे सिवा कोई नहीं-2 ।।2।।

माना कि मैं गरीब हूं, माना कि मैं फकीर हूं-2
मुझसे न ऐसे रूठिए, जैसा मेरा कोई नहीं-2 ।।3।।

ooo

रख दे सिर पर हाथ गुरुवर

रख दे सिर पर हाथ-2, गुरुवर तेरा क्या घट जाएगा?
ये, बालक भी तर जाएगा।।ध्रुव।।

दे दिया तुमने सबको सहारा हां जो द्वारे आया है।
भर दिया दामन सबका खुशी से जो अर्जी लाया है।
मुझको देने से-2, खजाना कम नहीं हो जाएगा।
ये बालक भी तर जाएग...

है पुराना ये रिश्ता हमारा जो उसे तुम याद करो।
अहसान कर दो तुम बालक तुम्हारा हूं अब सिर पर हाथ धरो।
प्यार का रिश्ता-2, हमारा टूटने ना पाएगा।
ये बालक भी तर जाएगा...

किश्ती हमारी ये तेरे हवाले है, उसे तुम पार करो।
दे दिया दामन उसको सहारा हां तो ये विश्वास करो।
ये तेरा दरबार-2, जय-जयकारों से गुंजाएगा।
ये बालक भी तर जाएग...

छोड़ तेरा द्वार गुरुवर भक्त कहां ये जाएगा?
ये आया तेरे द्वार गुरुवर और कहां ये जाएगा?
रख दे सिर पर हाथ-2, गुरुवर तेरा क्या घट जाएगा?
ये बालक भी तर जाएगा...

ooo

ये तेरा दरबार

ये तेरा दरबार, ये तेरा दरबार भगवन्!
मोक्षपुरी ले जाएगा, कर्मों से पार लगाएगा।
ये तेरा दरबार।।ध्रु.।।

चरणों में आए हैं ये अर्ज लाए हैं,
हमें तुम पार करो,
भटक चुके हैं हम, चारों गतियों में,
अब तुम उद्धार करो वरना ये बालक-2
भगवन् फिर से डूब जाएगा।
ये तेरा दरबार...।।1।।

दे दिया तुमने शुद्धात्म भाव जो,
उस पर ही बढ़ते चलें,
तजकर सभी कषाय, शरण में हम हैं आए,
तेरे ही संग में चलें निश्चित ये बालक-2
भगवन् अपने घर को जाएगा।
ये तेरा दरबार... ।।2।।

❍❍❍

गुरुवर दर्शन दे देना

आंखें बन्द करूं या खोलूं, मुझको दर्शन दे देना।
दर्शन दे देना, गुरुवर दर्शन दे देना।।ध्रु.।।

मैं नाचीज हूं बन्दा तेरा तू सबका दाता है,
तेरे हाथ में सारी दुनिया मेरे हाथ में क्या है?
तुझको हर पल देखूं ऐसा दर्पण दे देना...

तेरा मेरा नाता ऐसा रिश्ता है सदियों का,
जैसे एक नाता होता है सागर से नदियों का।
करूं साधना केवल तेरी साधन दे देना...

मेरी मांग बड़ी साधारण दर्श दिशाते रहियो,
हर इक श्वास के पीछे अपनी झलक दिखाते रहियो।
नाम रटूं मैं आखिर तक वो धड़कन दे देना...

❍❍❍

मैं आ तो गया हूं

मैं आ तो गया हूं मगर जानता हूं,
तेरे दर पे आने के काबिल नहीं हूं।
तेरी मेहरबानी का बोझ है इतना,
उसे मैं उठाने के काबिल नहीं हूं।।ध्रु.।।

तुमने अता की मुझे जिंदगानी,
मगर तेरी महिमा नहीं मैंने जानी।
कर्जदार तेरी दया का हूं इतना,
मैं कर्जा चुकाने के काबिल नहीं हूं।।...

ये माना कि दाता हो तुम दो जहां के,
मगर कैसे आऊं मैं झोली फैला के।
जो पहले दिया वही कम नहीं है,
उसे मैं निभाने के काबिल नहीं हूं।।...

मैं चाहता हूं चरणों में सिर को झुका दूं,
गुनाह जो किए हैं, वो बख्शवा लूं।
सिवा दिल के टुकड़े के अय मेरे मालिक,
कुछ भी चढ़ाने के काबिल नहीं हूं।।...

❍❍❍

सतगुरु तुम्हारे प्यार ने

सतगुरु तुम्हारे प्यार ने जीना सिखा दिया।
हमको तुम्हारे प्यार ने इंसां बना दिया।।ध्रु.।।

भूला हुआ था रास्ता भटका हुआ था मैं।
किस्मत ने मुझको आपके-2, काबिल बना दिया।।1।।

रहते हैं जलवे आपके नजरों में हर घड़ी।
मस्ती का जाम आपने-2 ऐसा पिला दिया।।2।।

जिस दिन से मुझको आपने अपना बना लिया।
दोनों जहां को दास ने-2 तब से भुला दिया।।3।।

जिसने किसी का आज तक सजदा नहीं किया।
वो सर भी मैंने आपके-2 दर पर झुका दिया।।4।।

❍❍❍

करुणा के सागर

करुणा के सागर ऐसी दया कर, जीवन की ज्योत उजागर हो जाए।
नेकी करें हम बदी से टलें हम, राहें हमारी सुन्दर हो जाएं।।ध्रु.।।

जीवन है हमको उपहार तेरा, तेरे चरण में संसार मेरा।
तेरे लिए ही जिएं मरे हम, जितना मिले वो अर्पण हो जाए...

अन्तर् के दर्पण में तेरी झलक हो, प्यासे हृदय में तेरी ललक हो।
हे नाथ अपनी करुणा बहा दे, तन मन हमारा पावन हो जाए...

हमको सुकूं दो हमको दिशा दो, हममें तुम्हारा माधुर्य भर दो।
हर कर्म तेरी आराधना हो, हर घर तुम्हारा मन्दिर हो जाए...

तेरे प्यार की दो बूंदें चाहें, तेरे ज्ञान से रोशन हों राहें।
विश्वास मन का कमजोर हो ना, हम सब तुम्हारी आशा लगाए...

ooo

मुझे भगवान् वो दिल दे

मुझे भगवान् वो दिल दे कि जिसमें प्यार तेरा हो।
जुबां वो दे जो करती हर समय इजहार तेरा हो।।ध्रु.।।

मुझे वो बख्श दे आंखें, जिन्हें हो जुस्तजू तेरी।
कि जर्रे-जर्रे में जिनको फक्त दीदार तेरा हो।।

मेरा साथी जमाने में बनाना उसको अय भगवन्!
दया हो जिसके दिल में और सेवादार तेरा हो।।

मुझे देना अगर संगत तो देना अपने प्यारों की।
कि जिनको हर समय विश्वास और ऐतबार तेरा हो।।

इन आंखों से लगाता रहूं मैं चरण रज उसकी।
भगत निष्काम जो करता सदा प्रचार तेरा हो।।

दास तो काट ही लेगा खुशी से जिंदगी अपनी।
कृपा का हाथ जब सर पे मेरी सरकार तेरा हो।।

ooo

मुझे तुमने गुरुवर

मुझे तुमने गुरुवर, बहुत कुछ दिया है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।ध्रु.।।

मुझे है सहारा तेरी बंदगी का।
है जिस पर गुजारा मेरी जिंदगी का।
मिला मुझको जो कुछ, तुम्हीं से मिला है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

किया कुछ ना मैंने, शर्मसार हूं मैं।
तेरी रहमतों का तलबगार हूं मैं।
दिया कुछ नहीं बस लिया ही लिया है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

मेरा ही नहीं तू सभी का है दाता।
तू ही सब को देता तू ही है दिलाता।
तेरा दिया मैंने खाया-पिया है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

मेरा भूल जाना, तेरा ना भुलाना।
तेरी रहमतों का कहां है ठिकाना।
तेरी इस मोहब्बत ने पागल किया है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

न मिलती अगर मुझको सौगात तेरी।
तो क्या थी जमाने में, औकात मेरी।
ये बंदा तो तेरे सहारे जिया है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

तेरी बंदगी से बंधा हूं मैं मालिक।
तेरी कृपा से मैं जिंदा हूं मालिक।
तूने ही जीने के काबिल किया है।
तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

○○○

गुरु चरणां विच बैठ कसम

गुरु चरणां विच बैठ कसम जो खावांगे।
जीए चाहे मरिए तोड़ निभावांगे।।ध्रु.।।

गंडां प्रेम दियां पक्कियां ने, कोई भावें लख तोड़े,
असां पाईयां न कच्चियां ने।
एनां गंडां नू होर भी पक्कियां पावांगे...।।1।।

डूंगा प्रेम दा सागर ए,
जिन्नां छाल मार लई, ओहना भर लई गागर ए।
असीं वी अपनी गागर भर ले जावांगे।।2।।

जेड़े दर उत्ते आउंदे ने,
गुरुआं दे पा दर्शन जीवन सफल बनांदे ने।
असीं वी अपना जीवन सफल बनावांगे।।3।।

गंगा प्रेम दी वगदी ए,
सत्संग सुनन लई, खलकत आउंदी भजदी ए।
असीं वी सुन-सुन, मन दा मैल मिटावांगे।।4।।

रब्ब रुसदा तां रुस जावे,
एहदी परवाह नहियों, साडा सतगुरु ना रुस जावे।
कदे वी अपना सतगुरु, नहीं रुसावांगे।।5।।

○○○

मेरी आस यही

ध्वनि : दिल लूटने वाले जादूगर ..

मेरी आस यही अरदास यही, हर श्वास तेरे गुण गाया करूं।
इक फूल बनाकर दिल अपना, चरणों में भेंट चढ़ाया करूं।।ध्रु.।।

मेरे मन में आप निवास करो, मेरे रोम-रोम में वास करो।
मैं दीपक बनाकर नयनों का, तेरे प्यार का दीप जलाया करूं।।

मैं ऐसे रहूं जिंदगानी में, रहता है कमल ज्यों पानी में।
हृदय में बसाकर प्यार तेरा, हर प्राणी को कंठ लगाया करूं।।

जब तक इस तन में प्राण रहे, मुझे तेरा सिमरन ध्यान रहे।
मैं बनकर इक सेवक तेरा, हर प्राणी का कष्ट मिटाया करूं।।

तेरे गुण मुझमें यूं झलकें, जैसे कि पिरोया मोती हो।
मैं धागा बनकर उसमें रहूं, एक प्यार की माला बनाया करूं।।

○○○

ले चलो परले पार

गुरु जी ले चलो परले पार,
परले पार की करूं बखाना।
जो कोई पहुंचा आनंद माना,
जहां विराजे महावीर स्वामी अलबेली सरकार।।ध्रु.।।

आंसू भर कर चन्दना बोली, अब तक थी प्रभु मैं न डोली।
कर्मों ने है मुझे सताया, सर मुंडवाया मुझे बिकाया।
हाथ में मेरे उड़द है बासी, मैं प्रभु तुम चरणन की दासी।
कर मेरा उद्धार...

इक दिन गौतम के मन आई, सबकी नैया पार लगाई।
अर्जुन माली जए हत्यारे, बड़े-बड़े प्रभु पापी तारे।
वर्धमान तुम मेरे मांझी, तुम बिन मेरा और न सांझी।
मैं क्यों रहूं मझधार...

रामचन्द्र से सीता बोली, कैसी मैं ब्याहता कैसी डोली।
सारी उमर पिया देस निकाला, अब मुझको अग्नि में डाला।
तेरे बच्चे सौंप रही हूं, तेरा सब कुछ सौंप रही हूं।
मेरा क्या घर-बार...

राधा जी कान्हा से बोली, कैसे रंग से खेले हो होली।
कच्चा रंग है उतर जाएगा, यह दो दिन में ढल जाएगा।।
ऐसे रंग से रंग दो चुनरिया, उतरे न बारम्बार...

○○○

दर्श दिखा दो

श्री सीमंधर जी दर्श दिखा दो मुझे-2।
अपने दर्श से तृप्ति करा दो मुझे।।ध्रु.।।

पाप की गठरी लिए मैं, भरत में रुलता फिरूं।
आप विचरें महाविदेह में दर्श कैसे कर सकूं।
शासन देवता वहां पहुंचा दो मुझे।।
श्री सीमंधर जी दर्श दिखा...।।1।।

देह पांच सौ धनुष की प्रभु वृषभ लक्षण शोभता।
रूप कंचन-सा प्रभु का जगत् का मन मोहता।
ऐसी सोहनी सूरतिया दिखा दो मुझे।।
श्री सीमंधर जी दर्श दिखा...।।2।।

चौंतीस अतिशय पैंतीस वाणी गुण प्रभु उर धारिया।
मधुर वाणी से दिया उपदेश भविजन तारिया।
ऐसी वाणी इक बार सुना दो मुझे।।
श्री सीमंधर जी दर्श दिखा...।।3।।

जो तेरा सिमरन करे वो निश्चय ही फल पाएगा।
इसलिए वल्लभ तेरे गुण नित सवेरे गाएगा।
शिव सुन्दरी से जल्दी मिला दो मुझे।।
श्री सीमंधर जी दर्श दिखा...।।4।।

ooo

आत्म धुन शाश्वत सत्य

मैं आत्मा हूँ अविनाशी हूँ।
अजर अमर हूँ शुद्ध पूर्ण हूँ।।

ध्रुव नित्य हूँ पूर्ण सत्य हूँ।
अव्यय अक्षय मैं आत्मा हूँ।।

नहीं कर्ता हूँ नहीं भोक्ता हूँ।
नहीं वक्ता हूँ नहीं त्राता हूँ।।

राग नहीं हूँ द्वेष नहीं हूँ।
देह नहीं हूँ मैं आत्मा हूँ।।

ज्ञान सूर्य हूँ मैं आत्मा हूँ।
शक्ति पिण्ड हूँ मैं आत्मा हूँ।।

शब्द नहीं हूँ रूप नहीं हूँ।
रस भी नहीं हूँ गंध नहीं हूँ।।

स्पर्श रहित हूँ मैं आत्मा हूँ।
अमूर्तिक हूँ मैं आत्मा हूँ।।

ब्रह्म स्वरूपी मैं आत्मा हूँ।
अर्हंत रूपी मैं आत्मा हूँ।।

राम रूपमय मैं आत्मा हूँ।
कृष्ण स्वरूपी मैं आत्मा हूँ।।

सत् चित् आनन्द मैं आत्मा हूँ।
सीता शक्ति मैं आत्मा हूँ।।

मैं आत्मा हूँ शिव स्वरूप मय।
क्लेश रहित हूँ मैं आत्मा हूँ।।

शांत स्वरूपी मैं आत्मा हूँ।
सिद्ध स्वरूपी मैं आत्मा हूँ।।

क्रोध नहीं हूँ मान नहीं हूँ।
माया नहीं हूँ लोभ नहीं हूँ।।

शस्त्र काट सकते नहीं मुझको।
अग्नि नहीं जला सकती है।।

पानी मुझे भिगो नहीं सकता।
हवा सुखा सकती नहीं मुझको।।

सहजानंदी मैं आत्मा हूँ।
शुद्ध स्वरूपी मैं आत्मा हूँ।।।

परमानंदी मैं आत्मा हूँ।
ज्ञाता द्रष्टा मैं आत्मा हूँ।।

मैं आत्मा हूँ मैं आत्मा हूँ।।

ooo

आनन्द सब में घोल दो

जीवन में आनन्द भरा है आनन्द सबमें घोल दो।
लेना देना आनन्द का हो बाकी सारा छोड़ दो।।ध्रु.।।

मन है तुम्हारे विचारों की माला, अच्छा-बुरा सब होने दो।
चुन लो कोई अनमोल मोती बाकी सारा छोड़ दो।।1।।

क्यों करते हो जप-तप पूजा कोई कहता है तो कहने दो।
आत्मा का दीदार करो तुम बाकी सारा छोड़ दो।।2।।

जग है तुम्हारे विचारों का मन्दिर मन-मन्दिर को सजने दो।
प्रेम का नन्हा-सा दीप जला लो बाकी सारा छोड़ दो।।3।।

दुनिया के रिश्ते नाते और बंधन धीरे-धीरे खुल जाने दो।
हाथ पकड़ लो अरिहंत प्रभु का बाकी सारा छोड़ दो।।4।।

ooo

शिवोऽहं शिवोऽहं

अमर आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।ध्रु.।।

अखिल विश्व का जो परमात्मा है।
सभी प्राणियों का वही आत्मा है।।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।।1।।

जिसे शस्त्र काटे न अग्नि जलाये।
गलाये न पानी न मृत्यु मिटाये।।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।।2।।

यही ज्ञान अर्जुन को हरि ने सुनाया।
यही ज्ञान वेदों में ऋषियों ने पाया।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।।3।।

जो व्यापक है कण-कण में है वास जिसका।
नहीं तीनों कालों में है नाश जिसका।।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।।4।।

है तारों-सितारों में प्रकाश जिसका।
है चाँद और सूरज में आभास जिसका।।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।।5।।

अमर आत्मा है मरणशील काया।
सभी प्राणियों के जो भीतर समाया।
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।।6।।।

○○○

वन्दन मेरा हर बार है

कोई गा ना सके, पार पा ना सके, हे देव तेरी महिमा अपार है।
पूर्ण शुद्धात्मा, सिद्ध परमात्मा-2, तुम्हें वंदन मेरा हर बार है।।ध्रु.।।

तेरा ज्ञान असीम अनन्त है, जिसकी सीमा नहीं, नहीं अन्त है।
मिथ्या अज्ञान का, कर्म-सन्तान का-2, हुआ ध्वस्त सभी अन्धकार है।।1।।

तू द्रष्टा है सारे जहान का, इस सृष्टि के सतत विधान का।
चाहे अणु परिमाण हो या परम महान-2, सब हस्तामलक संसार है।।2।।

आधि-व्याधि ना कोई भी रोग है, इन्द्रियों के ना कोई भी भोग हैं।
नहीं सुख-दुःख के द्वन्द्व, नित्य परम आनन्द-2, का अक्षय भरा भण्डार है।।3।।

कोई इच्छा न कोई द्वेष है, नहीं संक्लेष कोई भी शेष है।
दूर है मोह से, मिथ्या व्यामोह से-2, शुद्ध है और परम निर्विकार है।।4।।

करके जीवन-मरण से किनारा, तोड़ा संसार बन्धन ये सारा।
हुए अचल प्रतिष्ठ, परमात्म भाव निष्ठ-2, छोड़ा आवागमन वन विहार है।।5।।

ढ़ह गई ढ़हने वाली विनश्वर, देह की भित्तियाँ होके जर-जर।
कर रहा है नमन, ऐसा विज्ञान धन-2, जिसका रूप न कोई आकार है।।6।।

व्यक्ति का भेद भी है तो क्या है, भेद में भी अभेद भरा है।
पाया अद्वैत को, द्वैत जिसमें न हो-2 नहीं छोटे-बड़े का विचार है।।7।।

उन्नति का वह अन्तिम चरण है, हट गया जिसमें सब आवरण है।
सब बाधा टली, लब्धियाँ सब मिली-2, मिल गया जो पूर्ण आधार है।।8।।

❍❍❍

शत-शत वंदन

उन राहों की माटी चंदन सद्गुरु आए जिन राहों से।
उन राहों में शत-शत वन्दन सद्गुरु आए जिन राहों से।।ध्रु.।।

जर्रा-जर्रा महक उठा है, हर इक आंगन चहक उठा है।
झूम उठा है मन का उपवन सद्गुरु आए जिन राहों से।।1।।

ज्ञान का सद्गुरु दीप जलाया, अन्तर्मन उजियारा छाया।
हो गए सारे संशय भंजन सद्गुरु आए जिन राहों से।।2।।

आत्म-तत्व का बोध कराया, सत्य-अहिंसा का मार्ग दिखाया।
हो गया इनसे जन-जन पावन सद्गुरु आए जिन राहों से।।3।।

जिन-जिन राहों से गुजरे, धूप में बादल निकले।
ठण्डी-ठण्डी पवन चले बस, छांव करे बादल इनकी राहों में।।4।।

❍❍❍

न जन्म हुआ, न मरण मेरा

न जन्म हुआ, न मरण मेरा, न मुक्त हुआ न बंधन था।
अलख निरंजन रूप मेरा, मुझको अब तक मालूम न था।।ध्रु.।।

जब जाना अपने आपे को, तब नष्ट हुआ सब मोह मेरा।
मैं ही मैं हूँ न अन्य कोई, ऐसा अनुपम है रूप मेरा।।1।।

द्वैत वचन का मैं हूँ द्रष्टा, मन वाणी का स्रष्टा हूँ।
मैं अनुभव सिद्ध स्वरूप हूँ, ऐसा अद्भुत मेरा दर्पण था।।2।।

तीन गुणों से हूँ मैं न्यारा, पंचभूत से भी न्यारा हूँ।
मैं चेतन शुद्ध स्वरूप हूँ, इसका मुझको आभास न था।।3।।

जन्म-मरण मेरा धर्म नहीं, और पाप-पुण्य मेरा कर्म नहीं।
है अज निर्लेपी रूप मेरा, मुझको अब तक मालूम न था।।4।।

सारी सृष्टि में वास मेरा, है घट-घट में प्रकाश मेरा।
हूँ कण-कण में मैं समाय रहा, ऐसा दिव्य मेरा दर्शन था।।5।।

जब शरण श्री सद्गुरु की पाई, तब दिव्य दृष्टि हिय में छाई।
सब टूटे बंधन माया के, हुआ छिन्न-भिन्न अंधकार मेरा।।6।।

❍❍❍

तेरे नाम का सिमरण

तेरे नाम का सिमरण करके, मेरे मन में सुख भर आया।
तेरी कृपा को मैंने पाया, तेरी दया को मैंने पाया।।धु.।।

दुनिया की ठोकर खाकर, जब हुआ कभी बेसहारा।
न पाकर अपना कोई, तब मैंने तुम्हें पुकारा।
हे नाथ मेरे सिर ऊपर, तूने अमृत बरसाया।।1।।

तू संग में था नित मेरे, ये नैना देख न पाये।
चंचल माया के रंग में, ये नैन रहे उलझाये।
जितनी भी बार गिरा मैं, तूने पग-पग मुझे उठाया।।2।।

भव सागर की लहरों में, भटकी जब मेरी नैय्या।
तट छूना भी मुश्किल था, नहीं दीखे कोई खिवैय्या।
तू लहर बना सागर की, मेरी नाव किनारे लाया।।3।।

हर तरफ तुम्हीं हो मेरे, हर तरफ तेरा उजियारा।
निर्लेप रमैय्या मेरे, हर रूप तुम्हीं ने धारा।
तेरी शरण में आके दाता, तेरा तुझही को चढ़ाया।।4।।

ooo

भगवान् के द्वार

न चिट्ठी आई न आया बुलावा,
अन्दर से खड़के हैं तार।
मुझे जाना है भगवान् के द्वार-2।।ध्रु.।।

पांव में चाहे पड़ जाएं छाले,
कर दूंगा जीवन उनके हवाले।
दर्शन की मन में लागी लगन है,
चिन्तन में अब तो हर सांस मगन है।।
मैं न रुकूँगा रस्ते में इक पल,
धुन है यह मुझपे सवार।।1।।

माथे लगाऊं चरणों की धूली,
प्रभु के सिवा सारी दुनिया है भूली।
मिल जाएं प्रभु तो जग से क्या लेना,
बच्चे जो मांगें प्रभु ने वो देना।।
जन्मों की अब तो प्यास बुझेगी,
सपने होंगे साकार।।2।।

श्रद्धा सुमन मैं अर्पण करूँगा,
भक्ति का सच्चा धन मांग लूँगा।
भक्ति में प्रभु की खो जाऊँगा मैं,
जाकर के दर का ही हो जाऊँगा मैं।।
मैं तो आऊँगा द्वार पर तेरे,
दर्शन करूँ सुबह-शाम।।3।।

○○○

अर्ज मेरी सुन लो

अर्ज मेरी सुन लो जानी जान!
इसी जन्म में कर दो मेरे कर्मों का भुगतान।।
अर्ज मेरी सुन लो।।ध्रु.।।

भूले से या जान-बूझकर किसी को कष्ट दिया हो।
बोलचाल या बरतावे से किसी को भ्रष्ट किया हो।।
सबके बदले अभी चुकाकर, पा जाऊँ निर्वाण।।1।।

मेरे कर्मों ने जो किसी का बनता काम बिगाड़ा।
या मेरे पापों ने किसी का बसता घर हो उजाड़ा।।
मेरे लहू से पूरा कर दो, उन सबका भुगतान।।2।।

सुख के साथी डाल के बैठे चार चुफेरे घेरा।
इनकी चिकनी चुपड़ी सुनकर दिल घबराये मेरा।।
अपने सुख की खातिर मेरा, चाहते ये बलिदान।।3।।

जिस कुटुम्ब की खातिर मैंने, कपट फरेब किए हैं।
उन्होंने अपने सब बदले गिन-गिन ले ही लिये हैं।।
फिर भी काहे फंसा रहा हूं मैं, इस जग के दरम्यान।।4।।

ये नहीं कि मैं दुनिया की उलझन में उलझा हूँ।
मैं तो अगला पिछला कर्जा देने को सुलझा हूँ।।
क्योंकि अगले जन्म में मेरी, होगी नहीं पहचान।।5।।

○○○

चल रे राही!

साधना के रास्ते, आत्मा के वास्ते चल रे राही चल।
मुक्ति की मंजिल मिले, शान्ति के सरसिज खिले।।
चल रे राही चल।।ध्रु.।।

ज्ञान नहीं अज्ञान था, सो भटकते रहे हर जनम।
छल-कपट-माया में पड़कर कर रहे थे हर करम।।
राह हो कल्याण की भवहरण भगवान् की...।।1।।

कौन अपना है यहां किसको पराया हम कहें।
एक की आंखों में खुशियां एक के आंसू बहें।।
आत्म-मन्दिर में चलें ज्योति से ज्योति मिले...।।2।।

'चन्द्र' जीओ जगत में जल में कमल-सी जिन्दगी।
सत्य शिव सौन्दर्य की करते रहे हम बन्दगी।।
शेष सब निःशेष हो हृदय का अभिषेक हो...।।3।।

❍❍❍

सिद्धालय का साथ

मेरे सर पर रख दो गुरुवर अपने ये दोनों हाथ।
देना हो तो दीजिए सिद्धालय का साथ।। ध्रु.।।

इस जन्म में सेवा देकर, बहुत बड़ा अहसान किया।
बड़े दयालु तुम हो गुरुवर, मैंने तुम्हें पहचान लिया।।
हम साथ चलें अपने घर, बस रख लो इतनी बात...।।1।।

मेरे जैसे दीन-दुःखी का, कोई नहीं है रखवाला।
झूठी तसल्ली भी मुझको, कोई नहीं देने वाला।।
मुझे कुछ ना सूझे गुरुवर, छाई है गम की रात...।।2।।

बड़े ही निर्बल हाथ हैं मेरे, चारों ओर अंधेरा है।
थामे रहना मुझको गुरुवर, एक सहारा तेरा है।।
बस इतना करना गुरुवर, जाए ना मेरी लाज...।।3।।

तुमने तारे लाखों पापी, एक मुझे भी तार दो।
इस दुनिया से दुःखी हुआ मैं, अब मेरी भी सार लो।।
बस इतनी विनय है तुमसे, अब रख लो मेरी बात...।।4।।
देना हो तो...

❍❍❍

आत्म-ध्यान क्या है?

क्या आप अपना जीवन
आनंद, शांति, सुख, समृद्धि व
सम्पन्नता से जीना चाहते हैं?
क्या आप जीवन के रहस्यों का
ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं?
कौन हैं आप?
क्या है जीवन का सत्य?
क्या है असत्य?
किसका ज्ञान प्राप्त करने से
सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है?
बिना किसी शब्द-ज्ञान के आप एक तत्व
को जान लो तो आपको सर्वज्ञान हो सकता है।
आपके जीवन का हर पल प्रसन्नता
एवं मुक्ति का हो सकता है।
वह तत्व है –
अरिहंतों की साधना : **आत्म-ध्यान।**

आत्म-ध्यान साधना शिविर : एक परिचय

दिग्दर्शक : ध्यान गुरु, आचार्य सम्राट डॉ. श्री शिव मुनि जी म.सा.
प्रमुख संचालक : आत्म योगी प्रमुख मंत्री श्री शिरीष मुनि जी म.सा.
मुख्य प्रशिक्षिका : अरिहन्त आराधिका निशा जैन

धर्म जीवन जीने की कला है। आनंद हमारा स्वभाव है। शान्ति हमारे भीतर है और ज्ञान हम स्वयं हैं। फिर भी मनुष्य दु:ख और विषाद के चक्रव्यूह में क्यों फंसा हुआ है?

क्यों उसे अशान्ति और बेचैनी ने घेरा हुआ है?

क्यों वह अंधकार और अज्ञान में भटक रहा है?

मनुष्य के अंतरंग शत्रु अहंकार, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष क्यों बढ़ते ही जा रहे हैं?

इन सबका उत्तर है–स्वयं से दूरी। स्वयं का अपरिचय।

शरीर में स्वस्थता, मन में शान्ति एवं भीतर में आनंद का अनुभव, प्रत्येक व्यक्ति की यही अभीप्साएं हैं। स्वयं के परिचय के लिए आवश्यक है, आत्म-शुद्धि। आत्म-शुद्धि अर्थात् शरीर, मन और वचन की शुद्धि। इस शिविर में हम तीनों ही स्तर पर कार्य करते हैं। शरीर, मन एवं मन से परे आत्म-अनुभव की यह एक सम्पूर्ण साधना है।

इस साधना का मूल है, अकर्म। यह अकर्म की साधना है। कुछ न करते हुए भी पूर्ण आनंद से भर जाने की साधना है। यह शरीर की शुद्धि, आहार की शुद्धि, प्राण की शुद्धि, विचार की शुद्धि ध्यान के माध्यम से होती है। यह तीर्थंकर भगवंतों की साधना है, जिसका संक्षिप्त एवं सूक्ष्म रूप प्रदान करने हेतु, अरिहंत परमात्मा श्री सीमन्धर स्वामी भगवान् की असीम कृपा से जैनाचार्य पूज्य श्री शिव मुनि जी महाराज ने वर्षों की तपस्या के उपरान्त जन-जन के कल्याण के लिए 'आत्म-ध्यान साधना कोर्स' का निर्माण किया। यह शिविर 'गागर में सागर' के समान है। जीवन का परिवर्तन शब्द से नहीं, अनुभव से होता है। अनुभव ही जीवन को बदलता है। यह शिविर अनुभवजनित कोर्स है। इसका वास्तविक स्वरूप जानने के लिए एवं इसका सच्चा स्वाद चखने के लिए, आपको एक बार अनुभव से गुजरना आवश्यक है।

इससे अनेक लोगों को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से लाभ हुआ है। जीवन के सर्वांगीण विकास में यह कोर्स बहुत ही महत्व रखता है। समता एवं शान्ति को सब तक पहुँचाने की यह सरलतम साधना है।

इस शिविर में

1. आनन्द, शांति, ज्ञान की कुंजी
2. मन, वचन, काया से पार, आत्मा से परमात्मा बनने की कला
3. भेद-विज्ञान
4. आत्मज्ञान
5. वीतराग सामायिक
6. भाव आलोचना
7. भाव प्रतिक्रमण
8. योग निद्रा
9. ध्यान और कायोत्सर्ग
10. शरीर को स्वस्थ और आनंदित बनाए रखने के लिए आसन और प्राणायाम
11. धर्म-ध्यान से शुक्ल-ध्यान की ओर बढ़ने का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

भारतभर के अनेक शहरों में जैनाचार्य पूज्य श्री शिव मुनि जी महाराज के आशीर्वाद से श्रमणसंघीय प्रमुख मंत्री श्री शिरीष मुनि जी की प्रेरणा से एवं अरिहंत आराधिका निशा जैन के निर्देशन में ये कोर्स चलाये जा रहे हैं। ये कोर्स शिवाचार्य आत्म ध्यान फाउण्डेशन द्वारा संचालित हैं। **इन कोर्सों में किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति का बन्धन नहीं है।** सभी वर्ग के लोग इनमें भाग ले सकते हैं। आत्मबोध, आत्मदृष्टि व आत्मानुभव के लिए आप सपरिवार, ससंघ इष्ट मित्रों सहित सदा सादर आमंत्रित हैं।

1. बेसिक शिविर, एक दिवसीय प्रातः 9.00 से सायं 5.00 बजे तक सम्पन्न होने वाली कार्यशाला है जिसमें ध्यान एवं जीवन जीने के सूत्रों का अनुभवात्मक प्रयोग करवाया जाता है।
2. गम्भीर शिविर चार दिवसीय, आवास, निवास एवं मौन के साथ संवर-निर्जरा की उत्कृष्ट वीतराग साधना है।
3. गम्भीर शिविर सप्त दिवसीय एवं दस दिवसीय आवास, निवास एवं मौन के साथ आत्मानुभूति की गहनतम कार्यशाला है।

आत्म-ध्यान : एक विवरण

बेसिक शिविर (एक दिवसीय)

विशेष : एक दिवसीय शिविर सुबह 9.00 बजे से प्रारंभ होकर शाम 5.00 बजे सम्पन्न होता है।

प्रार्थना ध्यान : विनय एवं पाप शुद्धि के लिए।

सोऽहं ध्यान : श्वास व सोऽहं से चित्त की शुद्धि एवं स्वरूप-बोध की साधना।

कोऽहं ध्यान : सत्य की खोज एवं सत्य का बोध, सम्यक्त्व के बीज का वपन – मैं शुद्धात्मा में स्थापित – अहंकार का विलय।

मैं एवं मेरा : मैं एवं मेरे में अन्तर करते हुए मिथ्यात्व तथा मोह का त्याग एवं चारित्र रूप में आसक्ति का त्याग अनासक्त योगी की भूमिका में मेरे पन का त्याग कर वीतरागता में जीवन व्यतीत करना।

आलोचना : इस जीवन एवं पूर्व जन्मों के अनंत कर्मों को क्षय करने की उत्तम विधि–प्रायश्चित्त द्वारा आत्मशुद्धि से समस्त तनावों से मुक्त होकर जीवन में हलकापन आता है। आगे के लिए कर्म बंधन रुक जाते हैं। शुद्ध सामायिक एवं प्रतिक्रमण की विधि का प्रशिक्षण है आत्म-ध्यान बेसिक शिविर।

आत्म-ध्यान शिविर (चार दिवसीय आवास सहित)

विशेष : गंभीर शिविर प्रथम दिवस प्रात: 8.00 बजे प्रारंभ होता है तथा अंतिम दिवस दोपहर बाद 4.00 बजे सम्पन्न होता है।

जिन साधकों को आत्मबोध के पश्चात् आत्मरमण की रुचि जाग्रत हो गई है वे गंभीर शिविर में आमंत्रित हैं। इसमें जन्म-जन्मांतर के शुभाशुभ कर्मों का क्षय करने की विधि प्राप्त होती है। यह सम्यक्त्व को क्षायिक सम्यक्त्व में परिवर्तित करने का पुरुषार्थ है। धर्मध्यान से शुक्लध्यान में प्रवेश करने की विधि प्राप्त होती है। संसार में रहते हुए भी 24 घंटे सामायिक में रहने की कला का विकास होता है। "बिन घन परत फुहार" साधक अकारण ही अहर्निश आनंद में तल्लीन रहता है।

आत्म-ध्यान शिविर (सात दिवसीय आवास सहित)

जीवन के आमूल चूल रूपान्तरण की साधना इस शिविर में प्राप्त होती है। भेद-विज्ञान परिपुष्ट होता है। अष्ट कर्मों को क्षय कर अष्ट गुणों में रमण की

विधि विकसित होती है। माता मरुदेवी व भरत चक्रवर्ती ने जिस विधि से केवलज्ञान प्राप्त किया, उस विधि का गुप्तज्ञान प्रदान किया जाता है।

सप्त दिवसीय शिविर एक अनुपम अनुभव देता है। साधक के सभी मानसिक-आत्मिक क्लेश मूलतः नष्ट हो जाते हैं। वह संसार और परिवार के मध्य में रहकर भी जलकमलवत् संसार से निरपेक्ष रहता है। सतत सहज आनंद उसका स्वभाव बन जाता है।

आत्म-ध्यान शिविर (दस दिवसीय आवास शिविर)

इस शिविर में सम्यक्त्व में परिपक्वता को प्राप्त करने का उत्तम वातावरण मिलता है तथा शुक्ल ध्यान का प्रशिक्षण मिलता है। आत्म-ध्यान के सैद्धान्तिक पक्ष को विस्तार से समझाया जाता है जिससे साधक स्व- पर विकास में सहयोगी बनता है।

ये सभी कार्यक्रम आचार्य सम्राट् पूज्य श्री शिव मुनि जी महाराज के आशीर्वाद से 'शिवाचार्य आत्म-ध्यान फाउण्डेशन' द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। देश भर में विभिन्न क्षेत्रों में ये शिविर समय-समय पर लगाए जा रहे हैं। जो भी श्रावक संघ, युवक संघ, महिला मण्डल अपने क्षेत्र में ये शिविर आयोजित करवाना चाहें तो ध्यान केन्द्र से सम्पर्क कर सकते हैं। आचार्यश्री जी द्वारा प्रशिक्षित निष्णात प्रशिक्षक उपलब्ध हैं। वे इस हेतु सेवा दे सकते हैं।

शिविर के नियम

1. **बेसिक कोर्स किये हुए साधक ही गम्भीर शिविर में प्रवेश कर पायेंगे।**
2. **बेसिक शिविर में प्रार्थना, ध्यान, आसन, प्राणायाम, आलोचना एवं वीतराग सामायिक का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण दिया जायेगा।**
3. **साधकों को गंभीर साधना शिविर में पूर्ण मौन रहना होगा, मोबाइल आदि का प्रयोग निषेध है।**
4. **गंभीर साधना शिविर में जो मार्गदर्शन मिलेगा वही करना होगा।**
5. **गंभीर साधना शिविर काल में साधकों को शिविर स्थल पर ही रहना होगा।**
6. **गंभीर साधना शिविर काल में बाहर के किसी व्यक्ति से सम्पर्क नहीं कर पाएंगे।**

7. गंभीर साधना के लिए सफेद वस्त्र, हल्के रंग के वस्त्र एवं ढीले वस्त्र लाएं। सामायिक के उपकरण साथ ला सकते हैं।
8. साधक आवश्यक सामग्री कपड़े, चादर, योगासन हेतु दरी आदि साथ लायें।
9. सभी शिविरों से पूर्व रजिस्ट्रेशन आवश्यक है।
10. प्रत्येक शिविर में साधकों को एक घण्टा पहले पहुंचना अनिवार्य है।

सम्पर्क सूत्र

कांता पारख, पुणे : 9422008289	सविता कर्नावट, पुणे : 9881090587
सुनीता जैन, राहाता : 8275032824	साधना रूणवाल, औरंगाबाद : 8888833336
राजू धाड़ीवाल, नाशिक : 9422754344	अरविन्द भण्डारी, उदयपुर : 9414163619
रेणु जैन, लुधियाना : 9316858566	प्रवीण जैन, लुधियाना : 9501703100
प्रभा जैन, जालंधर : 9417106744	अमित जैन, लुधियाना : 9417050992
उषा शर्मा, अम्बाला : 9354688532	वरुण जैन, लुधियाना : 9417895165
रजत जैन, जम्मू : 9419182636	प्रेम जैन, जम्मू : 9419180480
अलका जैन, दिल्ली : 9810024019	राजपाल जैन, दिल्ली : 9810114233
रेणु जैन, इन्दौर : 7869999251	रवि बाफना, इन्दौर : 9827023466
दिनेश कोठारी, मुम्बई : 9867502991	पारस कोठारी, मुम्बई : 9867502990
कमल बेन धुपिया, सूरत : 9428482678	मनीषा संचेती, सूरत : 9328767733
अरिहंत जैन, भीलवाड़ा : 9413358248	सज्जनराज तालेड़ा, चैन्नई 9941344066
ज्ञानचन्द कोठारी, चेन्नई : 9840098848	राजकुमार जैन, दिल्ली : 9899127722

Visit us our website : www.jainacharya.org
Email : shivacharyaji@yahoo.co.in
Facebook : htttp://www.facebook.com/shivmuni
Twitter : http://www.twitter.com/jainacharya
Blogger : http://acharyashivmuni.blogspot.in
Our contact No. : 09350111542
YouTube : http://www.youtube.com / jainacharyaji

शिवाचार्य आत्मध्यान फाउण्डेशन : एक परिचय

तीन दशकों की कठोर तपस्या और सतत एकनिष्ठ साधना से आचार्य सम्राट डॉ. श्री शिव मुनि जी महाराज ने 'आत्म ध्यान' का अन्वेषण और अनुसंधान किया है। यह वही ध्यान साधना है जिसकी आराधना करके अतीत में अनन्त आत्माओं ने आत्मार्थ (सिद्धालय) को उपलब्ध किया है। वर्तमान में भव्य आत्माएं इसकी आराधना द्वारा आत्मार्थ को सिद्ध कर रही हैं। भविष्य में भी इस विधि से साधक सिद्धि के शिखर पर आरोहण करते रहेंगे।

'आत्मध्यान' बुद्धों का प्रशस्त मार्ग है।

'आत्मध्यान' अरिहंतों का विजय-पथ है।

'आत्मध्यान' आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं और साध्वियों को इस पार से उस पार ले जाने वाला धर्म-यान है।

श्रद्धेय शिवाचार्य श्री ने अरिहंतों की इस साधना के अन्वेषण हेतु सामान्य गृहस्थ से साधु-पद को स्वीकार किया। साधु-पद से आप आचार्य-पद पर आरोहित हुए। विशाल श्रमण-संघ के आराध्य और अनुशास्ता बने। इस पूरी यात्रा में आप संघ का संचालन भी करते रहे और आत्मध्यान के सोपानों पर भी आरोहण करते रहे। आपने ध्यान के उच्चतम शिखर का स्पर्श किया। इसी के परिणामस्वरूप आप देह में रहकर भी विदेह-भाव की अवस्था में विहरमान हैं। आप भेद में अभेद और अभेद में भेद के ज्ञाता हैं। देह-धर्म और संघ-धर्म का निर्वाह करते हुए भी आप अहर्निश ज्ञाता-द्रष्टा भाव में स्थित हैं।

जल से भरे मेघ जल को बांटने और शुष्क प्रकृति को सरसब्ज बनाने के लिए लालायित होते हैं। इसी भांति श्रद्धेय शिवाचार्य श्री भी उपलब्ध ध्यान-सम्पदा को जगत में बांटने हेतु करुणाशील हैं। आप अपने प्रवचनों, वार्ताओं, संवादों, शिविरों के माध्यम से हर क्षण ध्यान रूपी अमृत का वर्षण कर जगत पर महान उपकार कर रहे हैं।

18 मार्च 2020 को श्रद्धेय शिवाचार्य श्री के दिशा-दर्शन में श्रावक-समिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री रवीन्द्रनाथ जी जैन एवं अनेक प्रबुद्ध श्रावकों तथा ध्यान समर्पित मुमुक्षुओं ने मिलकर 'शिवाचार्य आत्मध्यान फाउण्डेशन' की स्थापना की। इस ट्रस्ट का पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) 8 मई 2020 को हुआ। (रजिस्ट्रेशन नं. - 397ए बुक नम्बर 4 वर्ष 2020-2021 नई दिल्ली)। रजिस्ट्रड कार्यालय का पता : एफ-13/4, द्वितीय तल, मॉडल टाउन, उत्तर-पश्चिम दिल्ली-110009 ।

फाउण्डेशन के मुख्य उद्देश्य

परम श्रद्धेय ध्यान गुरु आचार्य सम्राट डॉ. श्री शिव मुनि जी म.सा. के आशीर्वाद से स्थापित इस फाउण्डेशन का प्रमुख उद्देश्य देश के विभिन्न स्थानों पर स्थित ध्यान केन्द्रों का संचालन करना, आत्म ध्यान से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करना और आत्म ध्यान साधकों को एक प्लेटफार्म पर लाकर उनके ध्यान अनुभवों का लाभ ध्यान करने वाले हर एक साधक तक पहुंचाना है। फाउण्डेशन के सभी ट्रस्टी एवं सदस्यगण आचार्य डॉ. श्री शिव मुनि जी म. एवं आत्मध्यान के प्रति समर्पित हैं। यह फाउण्डेशन सम्पूर्ण विश्व में आत्म ध्यान साधना के प्रसार के लिए कटिबद्ध है।

जैसा कि आपको विदित है कि ध्यानगुरु आचार्य सम्राट डॉ. श्री शिव मुनि जी म. के श्रीमुख से आत्म ध्यान साधना की धारा अविरल प्रवाहित हो रही है। शिवाचार्य श्री के सान्निध्य में होने वाले हर आयोजन में ध्यान की चिंतनधारा लाखों-करोड़ों लोगों की प्रेरणा का स्रोत बन रही है। ऐसे में शिवाचार्य श्री द्वारा प्रदत्त आत्म ध्यान साधना से सम्बन्धित ऑडियो-वीडियो, पुस्तकों आदि का संचय करना, प्रिंट मीडिया, सोशल मीडिया आदि के माध्यम से उनका संरक्षण, संवर्धन, सृजन एवं संचयन करना भी ट्रस्ट का प्रमुख उद्देश्य है।

इस ट्रस्ट के माध्यम से आत्म ध्यान प्रशिक्षकों का वर्ग तैयार कर उनकी समस्त व्यवस्थाओं को संचालित किया जाता है।

आत्म ध्यान केन्द्र

वर्तमान में इस ट्रस्ट के अंतर्गत चार आत्म ध्यान केन्द्र हैं जिनके माध्यम से आत्म ध्यान साधक ध्यान के विभिन्न प्रयोगों द्वारा अपने जीवन को सफल व सार्थक बना रहे हैं। चार आत्म ध्यान केन्द्र निम्नोक्त हैं –

1. श्री आदीश्वर धाम, कुप्पकलां, जिला मालेरकोटला, पंजाब।
2. श्री सरस्वती विद्या केन्द्र, राम नगर, मखमलाबाद नाशिक, महाराष्ट्र।
3. आत्म भवन, अवध संगरीला, बलेश्वर, सूरत, गुजरात।
4. आत्मध्यान केन्द्र, पटियाला, पंजाब।

अनुरोध-निवेदन

समाज के सभी वर्गों एवं ध्यान प्रेमी मुमुक्षुओं से अनुरोध है कि तन, मन एवं धन से इस ध्यान मिशन से जुड़ें। अधिक से अधिक ध्यान शिविरों में भाग लें! अपनी सेवाओं एवं आर्थिक सहयोग से इस संस्था को समृद्ध करें! पुण्यानुबंधी पुण्य के अर्जन का यह एक महान अवसर है।

शिवाचार्य आत्म ध्यान फाउण्डेशन, नई दिल्ली

रविन्द्रनाथ जैन (अध्यक्ष) **रवि जैन (महामंत्री)**

9810020054 **9810004663**

राजपाल जैन (कोषाध्यक्ष) : 9810114233

ध्यान साधना केन्द्रों के विकास एवं आत्मध्यान साधना के प्रचार-प्रसार हेतु आपका सहयोग अपेक्षित है। कृपया निम्नलिखित अकाउंट में सहयोग-राशि भिजवाएं।

SHIVACHARYA ATAM DHYAN FOUNDATION
BANK - HDFC BANK NASHIK-422005
IFSC CODE – HDFC0000064
Current A/C NO. – 50200063139680

विशेष : दान-राशि की रसीद प्राप्त करने हेतु निम्न नम्बरों से सम्पर्क करें :

श्री राजु धाड़ीवाल, नाशिक	*श्री राजपाल जैन, दिल्ली*	*श्री अमित जैन, लुधियाना*
9422754344	9810114233	9417050992

श्री रोहित जैन, सूरत	*कार्यालय : सुभाष /धर्मेन्द्र*
9825100020	9350111542

श्री सरस्वती विद्या केन्द्र, नासिक : एक परिचय

राम नगर, मखमलाबाद, तवली फाटा, पेठ रोड़, नासिक (महाराष्ट्र)

जैन और जैनेतर धर्म परम्पराओं में आत्मा के सर्वोच्च विकास के लिए – अथवा सिद्धालय की सिद्धि के लिए 'ध्यान' को सर्वोच्च और सर्वोत्तम साधना माना गया है। भगवान् ऋषभदेव से भगवान् महावीर पर्यंत सभी चौबीस तीर्थंकरों ने ध्यान-साधना के द्वारा ही केवलज्ञान (आत्म-सिद्धि की परम-अवस्था) को उपलब्ध किया। हजारों वर्ष पूर्व निर्मित/ उत्कीर्णित चौबीस तीर्थंकर-भगवन्तों की प्रतिमाएं (अद्यतन जो उपलब्ध हुई हैं) ध्यान मुद्रा में अवस्थित हैं। इस साक्ष्य से भी यह तथ्य प्रमाणित है कि 'ध्यान' ही सिद्धालय की सिद्धि का प्रमुख हेतु है।

भरतक्षेत्र के उत्कृष्ट पुण्योदय से एक महान साधक श्रद्धेय शिवाचार्य श्री के रूप में इस धरा पर अवतरित हुए। पूर्व जन्मों की आत्म-साधना ध्यान-साधना की सम्पदा को शिखर पर ले जाने के लिए आप उत्कण्ठित हुए। फलतः वर्तमान तीर्थंकर अरिहंत भगवान् श्री सीमंधर स्वामी की अनिर्वचनीय कृपाएं आप पर बरसीं। इस विधि से भरतक्षेत्र में विलुप्त प्रायः 'आत्म ध्यान साधना' पुनः प्रकट हुई। शिव की प्यास से भरतक्षेत्र ध्यान का अमृत प्राप्त कर धन्य हुआ।

गांव-गांव, शहर-शहर और द्वार-द्वार पर दस्तक देकर श्रद्धेय शिवाचार्य श्री ने ध्यान की अलख जगाई। लाखों भव्यात्माओं में ध्यान की पिपासा जगी। दीप से दीप जलते गए। आज संघ में, समाज में, मानव-मानव में ध्यान चर्चित है, अर्चित है और आराधित भी है।

भारत के सैकड़ों गांव-नगरों में लाखों ध्यान साधक हैं जो नियमित रूप से ध्यान करते हैं और शुद्ध धर्म की आराधना कर स्व-पर कल्याण का यज्ञ रच रहे हैं। कई स्थानों पर ध्यान-केन्द्रों की स्थापना भी हुई है। उन्हीं केन्द्रों में प्रमुख है – **श्री सरस्वती विद्या केन्द्र** नाम से स्थापित ध्यान केन्द्र।

यह ध्यान केन्द्र सुप्रसिद्ध गजपंथा तीर्थ की तलहटी में स्थित है। यहां प्रकृति की सुषुमीय छटा का अखण्ड साम्राज्य है। चारों ओर शान्त-प्रशान्त वातावरण है। यह ध्यान केन्द्र प्राचीनकालीन तपोवनों के यथार्थ को साकार करता है। हमारा इतिहास बताता है कि प्राचीन काल में भारत में तपोवनों की एक समृद्ध संस्कृति थी जहां ऋषि-महात्मा ध्यान-साधना द्वारा आत्मा की उपासना करते थे। राजा, महाराजा, श्रेष्ठी और सामान्य कोटि के लोग भी समय-समय पर तपोवनों में जाकर साधना का अभ्यास करते थे। श्रद्धेय शिवाचार्य श्री के दिशा-दर्शन में स्थापित ध्यान केन्द्र भी ऐसे ही साधना स्थल हैं।

सन् 1997 में श्री सरस्वती विद्या केन्द्र की स्थापना हुई। प्रारम्भ में यहां ध्यान और शिक्षा की क्लासें स्थापित हुईं। कालांतर में यह केन्द्र ध्यान-साधना के प्रमुख संस्थान के रूप में विकसित हुआ। विगत कई वर्षों से यहां नियमित आत्म ध्यान धर्म-यज्ञ का आयोजन सफलतापूर्वक गतिमान है। ध्यान-पिपासु साधक-साधिकाओं का यहां निरंतर आवागमन रहता है।

संस्थान का विवरण

1. आत्म-ध्यान हॉल : इस विशाल हॉल में सैकड़ों साधक एक साथ बैठकर ध्यान कर सकते हैं।

2. लाइब्रेरी : आत्म-ध्यान से संबंधित पुस्तकें लाइब्रेरी में उपलब्ध हैं। जैन आगम और जैन धर्म-दर्शन से संबंधित पुस्तकों का विशाल भण्डार भी उपलब्ध है।

3. गुरु-निवास : पूज्य साधु-साध्वियों के लिए संयमानुकूल आवास स्थल।

4. साधक-निवास : आत्म-ध्यान साधक-साधिकाओं के लिए आधुनिक सुविधाओं से युक्त आवास-स्थल।

5. श्री पार्श्व-पद्मावती जिन मंदिर : अरिहंतों-भगवन्तों की आराधना, उपासना हेतु पावन जिनालय। (**प्रेरक :** गच्छाधिपति आचार्य प्रवर श्री नित्यानंद जी महाराज)।

6. भोजनशाला : साधकों और दर्शनार्थियों हेतु शुद्ध-सात्विक भोजन की यहां व्यवस्था है।

आप आमंत्रित हैं–

- भक्ति, साधना एवं सेवा हेतु!
- देव, गुरु, धर्म के सच्चे स्वरूप को जानने हेतु!
- भेद से अभेद, अभेद से भेद की साधना में अवगाहन हेतु।।
- अजीव से जीव, पदार्थ से परमात्मा, आर्त्त-रौद्र ध्यान से धर्म-शुक्ल ध्यान में पैठने हेतु।
- संसार से सिद्धालय की दिशा में प्रयाण हेतु।
- 'पर' से 'स्व' में लौटने हेतु।
- मैं कौन हूँ? क्या हूँ? क्यों हूँ? मेरा अन्तिम लक्ष्य क्या है? मेरी संभावनाएं क्या हैं? 'मैं क्या हूँ और क्या हो सकता हूँ' इस संभावना के साकार हेतु!

सम्पर्क सूत्र

सुनीता जैन	**8275032824**
कान्ता पारख	**9422008289**
राजू धाडीवाल	**9422754344**
कार्यालय	**8275851542**

ooo

श्री आदीश्वर धाम तीर्थ-स्थल : एक परिचय

लुधियाना-मालेरकोटला राजमार्ग पर स्थित **"श्री आदीश्वरधाम"** जैन धर्म और श्रमण संस्कृति का एक नव्य-भव्य तीर्थस्थल है। चौदह एकड़ भूभाग में फैला यह तीर्थस्थल महानगरीय कोलाहल और प्रदूषण से सर्वथा मुक्त है। हरितिमा से खिलखिलाती प्रकृति की पावन गोद आपका स्वागत करती है। इस परिसर में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति यहां की पर्यावरणीय शुद्धता, धार्मिक वातावरण और सांस्कृतिक सुषमा को देखकर मंत्रमुग्ध हो उठता है।

श्रमण संस्कृति के आदिपुरुष आदीश्वर प्रभु ऋषभदेव एवं महाविदेह में विहरमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी की भक्ति में स्थापित भव्य ध्यान-मंदिर जहां वास्तुकला की दृष्टि से चित्ताकर्षक है वहीं आध्यात्मिक ऊर्जा का अक्षय उत्स / स्रोत है। श्रद्धेय शिवाचार्य श्री ने अपने कई प्रवासों के दौरान सुदीर्घ ध्यान-समाधि से इस परिसर में वीतराग साधना द्वारा अध्यात्म की प्राण प्रतिष्ठा की है। आज यह परिसर ध्यान-योग साधना का प्राणवन्त प्रतीक बन चुका है। यहां की आबो हवाओं में आत्म ध्यान साधना के संगीत बजते हैं। **"मैं आत्मा"** एवं **"सोऽहं"** का अनहद नाद यहां प्रतिक्षण अनुगुंजित रहता है। आज पंचम काल में चतुर्थ आरे की साधनामयी अनुभूति के लिये तथा पूणिया श्रावक की सामायिक के दुर्लभ अनुभव को साक्षात् जीने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं।

सैकड़ों श्रावक ऐसे हैं जो पूर्व में मनोरंजन अथवा छुट्टियां मनाने के लिए हिल-स्टेशनों पर जाते थे, परंतु विगत कुछ वर्षों से वे अवकाश के प्रत्येक प्रसंग पर आदीश्वरधाम आते हैं और आत्मध्यान के द्वारा मानसिक तथा आध्यात्मिक ऊर्जा को प्राप्त करते हैं। तन, मन और आत्मा के स्वास्थ्य के अभीप्सुओं से हमारा सादर अनुरोध है कि एक बार इस परिसर में पधारें, यहां के शुद्ध-सुवासित वातावरण में स्वयं से साक्षात्कार साधें तथा हमें साधर्मिक सेवा का पुण्यानुबन्धी पुण्य प्रदान करें।

भक्ति – साधना – ध्यान और सेवा

भक्ति : पंच परमेष्ठी भगवान की प्रार्थना एवं ध्यान।

साधना : मन के पार जाने के लिये आत्म-ध्यान के प्रयोग से चित्त में समाधि का अनुपम अनुभव। वीतराग सामायिक एवं मंगलमैत्री के प्रयोगों द्वारा आत्म-बोध की प्राप्ति। सुख, शांति एवं समृद्धि के लिये आचार, विचार और आहार-शुद्धि के प्रयोग।

मिथ्यात्व, मोह का त्याग, वैराग्य, सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व के द्वारा आत्मज्ञान व आत्म-ज्ञान से केवलज्ञान तक पहुंचना।

ध्यान-शिविर : बेसिक शिविर, चार दिवसीय शिविर, सप्त दिवसीय शिविर एवं दस दिवसीय शिविरों का यहां नियमित रूप से समय-समय पर आयोजन किया जाता है।

सेवा : प्रत्येक शुद्धात्मा के आध्यात्मिक विकास में सहयोग करना। भक्ति, साधना, ध्यान और सेवा का यह प्रायोगिक विज्ञान श्रद्धेय शिवाचार्य श्री के मार्गदर्शन में कुशल साधक-साधिकाओं द्वारा प्रदान किया जाता है। फिजियोथैरेपी एवं आंखों की चिकित्सा भी यहां की जाती है।

श्री आदीश्वरधाम की विविधता

1. **जिन मंदिर-आदिनाथ भगवान** : प्रेरक : गच्छाधिपति आचार्य प्रवर श्री नित्यानंद जी
2. **सीमंधर स्वामी त्रिमंदिर :** प्रेरक : आत्म-ज्ञानी श्री कनुदादा जी
3. **शिवाचार्य जीवन दर्शन :** बालकनी में
4. **आचार्य विमल शिव समवसरण (ध्यान के लिए बड़ा हॉल)**
5. **आदिनाथ संस्कृति एवं आत्म ज्ञान ध्यान मंदिर :** प्रथम बेसमेंट
6. **गुरु मंदिर :** सेकंड बेसमेंट
7. **साधु-साध्वी सेवा केन्द्र**
8. **तीर्थ यात्री एवं साधक निवास**
9. **गौतम लब्धि भण्डार**
10. **शिवाचार्य हैल्थ केयर सेन्टर (फिजियोथैरेपी एवं आंखों की चिकित्सा का केन्द्र)**

सेवा–समर्पित संस्थान

1. श्री आदीश्वरधाम में वृद्ध, रुग्ण, ग्लान साधु-साध्वियों के आवास, चिकित्सा, सेवा और प्रासुक विधि अनुसार आहारादि की संपूर्ण व्यवस्थाएं की गई हैं।
2. आत्मार्थी ध्यान साधक अल्प या दीर्घावधि तक यहां रहकर ध्यान साधना का लाभ उठा सकते हैं।
3. आप भी अपना सहयोग देकर पुण्यानुबंधी पुण्य का उपार्जन कीजिये। आप द्वारा दिये गये दान पर 80जी के अंतर्गत आयकर की छूट प्राप्त होती है।

आपके द्वारा दान की गई राशि निम्न सेवाओं के लिये प्रयोग की जाती है–

1. ध्यान साधना के प्रचार में,

2. परिसर (केन्द्र) के रख-रखाव में,

3. भोजनशाला में, आजीवन मिति आदि सेवा,

4. प्रतिमाह भण्डारे (अन्नदान) में,

5. वृद्ध साधु-साध्वी सेवा में,

6. साधारण खाते-मैंटेनेन्स आदि में,

7. जीव दया-खाते में...।

सम्पर्क सूत्र

श्री राजपाल जैन, दिल्ली	**9810114233**
श्री अमित जैन, लुधियाना	**9417050992**
श्री वरुण जैन, लुधियाना	**9417895165**
श्रीमती रेणु जैन, लुधियाना	**9316858566**
कार्यालय	**8437700992**

जैन धर्म दिवाकर
आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म भूमि	:	राहों
पिता	:	लाला मनसाराम जी चौपड़ा
माता	:	श्रीमती परमेश्वरी देवी
वंश	:	क्षत्रिय
जन्म दिनांक	:	वि.सं. 1939 भा. सुदि वामन द्वादशी (12)
दीक्षा	:	वि.सं. 1951 आषाढ़ शुक्ल 5
दीक्षा स्थान	:	बनूड़ (पटियाला)
दीक्षा गुरु	:	मुनि श्री सालिगराम जी महाराज
विद्या गुरु	:	आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज (पितामह गुरु)
साहित्य सृजन	:	अनुवाद, संकलन-सम्पादन-लेखन द्वारा लगभग 60 ग्रन्थ
आगम अध्यापन	:	शताधिक साधु-साध्वियों को।
कुशल-प्रवचनकार	:	तीस वर्ष से अधिक काल तक।
आचार्य पद	:	पंजाब श्रमण संघ, वि.सं. 2003, लुधियाना।
आचार्य सम्राट् पद	:	अ.भा. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ सादड़ी (मारवाड़) 2009 वैशाख शुक्ल
संयम काल	:	67 वर्ष लगभग
स्वर्गवास	:	वि.सं. 2019 माघवदि 9 (ई. 1962) लुधियाना
आयु	:	79 वर्ष
विहार क्षेत्र	:	पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश आदि।
स्वभाव	:	विनम्र-शान्त-गम्भीर, प्रशस्त विनोद।
समाज कार्य	:	नारी शिक्षण प्रोत्साहन स्वरूप कन्या महाविद्यालय एवं पुस्तकालय आदि की प्रेरणा।

जैन भूषण, पंजाब केसरी, बहुश्रुत, महाश्रमण गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म भूमि	:	साहोकी (पंजाब)
जन्म तिथि	:	वि.सं. 1979 वैशाख शुक्ल 3 (अक्षय तृतीया)
दीक्षा	:	वि.सं. 1993 वैशाख शुक्ल 13
दीक्षा स्थान	:	रावलपिंडी (वर्तमान पाकिस्तान)
गुरुदेव	:	आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज
अध्ययन	:	प्राकृत, संस्कृत, उर्दू, फारसी, गुजराती, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के जानकार तथा दर्शन एवं व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित, भारतीय धर्मों के गहन अभ्यासी।
सृजन	:	हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण पर भाष्य, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापना आदि कई आगमों पर बृहद् टीका लेखन तथा तीस से अधिक ग्रन्थों के लेखक।
प्रेरणा	:	विभिन्न स्थानकों, विद्यालयों, औषधालयों, सिलाई केन्द्रों के प्रेरणा स्रोत।
विशेष	:	आपश्री निर्भीक वक्ता, सिद्धहस्त लेखक एवं कवि थे। समन्वय तथा शान्तिपूर्ण क्रान्त जीवन के मंगलपथ पर बढ़ने वाले धर्मनेता, विचारक, समाज सुधारक एवं आत्मदर्शन की गहराई में पहुंचे हुए साधक थे। पंजाब तथा भारत के विभिन्न अंचलों में बसे हजारों जैन-जैनेतर परिवारों में आपके प्रति गहरी श्रद्धा एवं भक्ति है। आप स्थानकवासी जैन समाज के उन गिने-चुने प्रभावशाली संतों में प्रमुख थे जिनका वाणी-व्यवहार सदा ही सत्य का समर्थक रहा है। जिनका नेतृत्व समाज को सुखद्, संरक्षक और प्रगति पथ पर बढ़ाने वाला रहा है।
स्वर्गवास	:	मण्डी गोविन्दगढ़ (पंजाब) 23 अप्रैल, 2003 (रात 11.30 बजे)

आचार्य सम्राट श्री शिव मुनि जी महाराज : शब्द चित्र

पिता	:	श्री चिरंजीलाल जी जैन
माता	:	श्रीमती विद्यादेवी जैन
जन्म दिनांक	:	18 सितम्बर, 1942
जन्म स्थान	:	रानियां (हरियाणा) ननिहाल पक्ष
पैतृक स्थल	:	मलोट मण्डी, जिला : मुक्तसर - पंजाब
वर्ण	:	वैश्य ओसवाल
गोत्र	:	भाबू
शिक्षा	:	एफ.एस.सी. नॉन मेडीकल, डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर
	:	एम.ए. (दर्शन शास्त्र) एम.ए. (अंग्रेजी माध्यम)
	:	पी-एच.डी. (भारतीय धर्मों में मोक्ष : जैन धर्म के विशेष सन्दर्भ में)
	:	डी.लिट् (ध्यान एक दिव्य साधना) विभिन्न धर्मों के सभी गुह्य ग्रन्थों के गहन अध्ययन के आधार पर।
दीक्षा	:	17 मई 1972
दीक्षा स्थान	:	मलौट मंडी (पंजाब)
दीक्षा गुरु	:	महाश्रमण, राष्ट्रसंत, श्रमण संघीय सलाहकार श्री ज्ञान मुनि जी महाराज
युवाचार्य पद श्रमण संघीय	:	13 मई, 1987, पूना (महाराष्ट्र)
आचार्य पदारोहण	:	9 जून 1999, अहमदनगर, महाराष्ट्र में
चादर महोत्सव	:	7 मई 2001, ऋषभ विहार, दिल्ली में
भाषा-ज्ञान	:	हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, पंजाबी आदि
पद-यात्राएँ	:	पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर तक की करीब 40 हजार किलोमीटर की पद यात्रा

शिष्य-सम्पदा : श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री श्री शिरीष मुनि जी म.
युवामनीषी मधुर गायक सहमंत्री श्री शुभम् मुनि जी म.
प्रवचन प्रभाकर श्री शमित मुनि जी म.
श्री शौर्य मुनि जी म.

प्रशिष्य : मधुर गायक श्री निशांत मुनि जी म.
परम सेवाभावी श्री शाश्वत मुनि जी म.
श्री शुद्धेश मुनि जी म.

उपाधि : युगपुरुष, युगप्रधान, आत्म-अनुशास्ता,
राष्ट्रसंत-2013, योगिराज-2002
आत्मज्ञानी सद्गुरुदेव, राष्ट्र गौरव
तपसूर्य, (श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ) उदयपुर-2018
आगम-अतिधन्वा (राष्ट्रीय दिगम्बर जैन समाज द्वारा)
अध्यात्म ज्योति (तेरापंथ समाज द्वारा) उदयपुर 2018
ध्यानगुरु (मुख्यमंत्री मध्य प्रदेश) इन्दौर 2017
Dr. A.P.J. Abdul Kalam World Peace Award 2020 (All India Council of Human Rights, Liberties & Social Justice)
LARGEST NUMBER OF WORKSHOPS ON MEDITATION (Golden Book of World Record)

आचार्य श्री जी के निर्देशन व मार्गदर्शन में सम्पन्न अति महत्त्वपूर्ण कार्य -

: श्रमण संघ विकास फण्ड

: बृहद् साधु सम्मेलन इन्दौर 2015

आचार्य श्री जी की प्रेरणा एवं उपदेश से निर्मित संस्थाएँ

: अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रमण संघीय श्रावक समिति

: शिवाचार्य आत्म ध्यान फाउण्डेशन

: भगवान महावीर मेडीटेशन एंड रिसर्च सेन्टर ट्रस्ट

: श्री सरस्वती विद्या केन्द्र, नाशिक

: आत्म आनंद ध्यान केन्द्र

लिखित-सम्पादित साहित्य

: लगभग 18 आगमों का सम्पादन, तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें!

श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म स्थान	:	नाई (उदयपुर, राजस्थान)
जन्म	:	19 फरवरी 1964
पिता	:	श्रीमान ख्यालीराम जी कोठारी
माता	:	श्रीमती सोहनबाई जी
वंश, गौत्र	:	ओसवाल, कोठारी
दीक्षार्थ प्रेरणा	:	दादी मोहनबाई कोठारी द्वारा
दीक्षा तिथि	:	7 मई, 1990
दीक्षा स्थान	:	यादगिरि (कर्नाटक)
दीक्षा गुरु	:	आत्मज्ञानी सद्गुरुदेव श्रमण संघीय चतुर्थ पट्टधर आचार्य सम्राट श्री शिव मुनि जी महाराज
शिक्षा	:	एम.ए. (हिन्दी साहित्य)
अध्ययन	:	आगमों का गहन गम्भीर अध्ययन, जैनेतर दर्शनों में सफल प्रवेश तथा हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत, मराठी, गुजराती भाषाविद्।
अलंकरण	:	श्रमण संघीय प्रमुख मंत्री, श्रमण श्रेष्ठ कर्मठयोगी, साधुरत्न।
शिष्य सम्पदा	:	श्री निशांत मुनि जी, श्री शाश्वत मुनि जी, श्री शुद्धेश मुनि जी
प्रेरणादायी कार्य	:	ध्यान योग साधना शिविरों का संचालन, बाल-संस्कार शिविरों और स्वाध्याय-शिविरों के कुशल संचालक। आचार्य श्री के अनन्य सहयोगी।

ध्यान साहित्य, सी.डी., डी.वी.डी.

: भारतीय धर्मों में मोक्ष : जैन धर्म के सन्दर्भ में (पी-एच. डी. शोध ग्रन्थ)

: ध्यान एक दिव्य साधना (डी. लिट ग्रन्थ)

: स्व की यात्रा (Voyage Within)

: आत्म ध्यान (ME WITHIN ME)

: वीतराग विज्ञान, भाग 1 व 2

: ध्यान से ज्ञान, भाग 1 व 2

: आत्म-ध्यान योग साधना (सचित्र योगासन)

: ध्यान पथ (विविध ध्यान विधियों पर प्रकाश)

: अमृत पुरुष

: शिवाचार्य ध्यानामृतम्

: शिवाचार्य वचनामृतम्

: योग मन संस्कार

: अमृत की खोज (श्रद्धा पर विशेष)

: लोगस्स : ध्यान विधि (सीडी सहित)

: सत्यम् शिवम् शुभम् (भजनामृतम्) श्री शुभम् मुनि जी

: शिव साधना सूत्र

: शिवाचार्य जीवन दर्शन

: आत्म ध्यान : स्वरूप एवं साधना

: सिद्धालय का द्वार - समाधि

: The doctrine of Liberation in Indian Religion (with Special reference to Jainism)
: Self Meditation (Nature and Practice)
: Self Development by Meditation
: Spiritual Practices of Lord Mahavira
: Return to Self
: The Jaina Pathway to Liberation
: The Fundamental Principles of Jainism
: The Doctrine of the self in Jainism
: The Jaina Tradition
: The Doctrine of Karma & Transmigration in Jainism

आत्म ध्यान साधना के विभिन्न प्रयोगों के लिए
युट्यूब चैनल से जुड़ें
www.youtube.com/JAINACHARYAJI

❍❍❍

श्रमण संघ

सत्य-समन्वय और संयम का ये पंथ है।
प्रेम से बोलो, श्रमणसंघ जयवन्त है॥

– सत्य की आराधाना जहां होती है, परस्पर विभिन्न मतों-विचारों का जहां पर समन्वय है और आत्म शुद्धि हेतु संयम की परिपालना जहां होती है, ऐसे श्रमण संघ की सदा जय हो, विजय हो!

आचार्य सम्राट ध्यान गुरु

डॉ. श्री शिव मुनि जी महाराज

के दिशा-दर्शन में स्थापित

शिवाचार्य आत्म-ध्यान फाउण्डेशन

एफ-13/4, द्वितीय तल, मॉडल टाउन, उत्तर-पश्चिम दिल्ली-110009

इस फाउण्डेशन के उद्देश्य –

1. आत्म ध्यान का विश्व-व्यापी प्रचार-प्रसार।
2. भारत के विभिन्न अंचलों में आत्म ध्यान केन्द्रों की स्थापना करना।
3. ध्यान साहित्य का प्रकाशन! सोशल मीडिया तथा आडियो, वीडियो, सी.डी., डी.वी.डी. आदि के माध्यम से जन-जन तक आत्म ध्यान साधना पहुंचाना!
4. आत्मध्यान में निष्णात प्रशिक्षक तैयार करना।

फाउण्डेशन द्वारा संचालित प्रमुख ध्यान केन्द्र

1. श्री आदीश्वर धाम कुप्पकलां, पंजाब
2. श्री सरस्वती विद्या केन्द्र, नासिक, महाराष्ट्र
3. आत्म भवन, अवध संगरीला, बलेश्वर, सूरत, गुजरात
4. आत्म ध्यान केन्द्र, पटियाला, पंजाब।

फाउण्डेशन के सहयोगी निम्नोक्त विशेषणों से सम्बोधित होंगे

ट्रस्टी	:	21,00,000	आधार स्तम्भ	:	15,00,000
हीरक स्तम्भ	:	11,00,000	स्वर्ण स्तम्भ	:	5,00,000
स्तम्भ	:	2,00,000	साधक सदस्यता	:	1,08,000

ध्यान साधना केन्द्रों के विकास एवं आत्मध्यान साधना के प्रचार-प्रसार हेतु आपका सहयोग अपेक्षित है। कृपया निम्नलिखित अकाउंट में सहयोग-राशि भिजवाएं।

SHIVACHARYA ATAM DHYAN FOUNDATION
BANK - HDFC BANK NASHIK-422005 – IFSC CODE – HDFC0000064
Current A/C NO. – 50200063139680

विशेष : दान-राशि की रसीद प्राप्त करने हेतु निम्न नम्बरों से सम्पर्क करें :

श्री राजु धाड़ीवाल, नाशिक 9422754344	श्री राजपाल जैन, दिल्ली 9810114233
श्री अमित जैन, लुधियाना 9417050992	श्री रोहित जैन, सूरत 9825100020

कार्यालय : सुभाष /धर्मेन्द्र
9350111542

युगपुरुष आचार्य सम्राट श्री शिव मुनि जी म. वीतराग विज्ञान के अन्वेषक हैं। अपने 51 वर्षीय साधना काल में आपने आध्यात्मिक साधना में गहरे पैठ कर अमूल्य मुक्ताओं को खोजा है। आपके द्वारा अन्वेषित अध्यात्म की सरलतम विधि 'आत्म-ध्यान' आध्यात्मिक जगत की एक क्रांतिकारी घटना है जिसका अनुगमन कर असंख्य भव्यों ने शुद्धात्म भाव से साक्षात्कार साधा है।

श्रमण संघ के शिखर पुरुष आचार्य देव में अरिहंतों की आभा, सिद्धों की ज्योति, आचार्यों का पंचाचार, उपाध्यायों का आत्मज्ञान और साधु की सरलता के दर्शन साकार हुए हैं। आपने वीतराग विज्ञान के द्वारा भेद से अभेद की साधना को खोजकर सभी सम्प्रदायों का भेद समाप्त किया है। आप द्वारा वीतरागता का बिगुल इस भरत क्षेत्र में बजा है। आप जैसे सिद्ध पुरुष के अवतरण से यह धरा धन्य हुई है। आप में प्रकट वीतरागता को शत्-शत् नमन।